भूमिका

भगवान् कृष्ण का लोकरंजक चरित भारतीय साहित्य में अमर है। महाभारत से लेकर परवर्ती संस्कृत रचनाओं मे तथा भारत की विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं में श्रीकृष्ण के विविध चित्रण मिलते हैं। ब्रज के गोपीवल्लभ कन्हैया, गीता के महान् उपदेशक पांडव-सारथि और द्वारिका के वृष्णि-गण-नायक कृष्ण वास्तव में एक ही हैं। श्रीकृष्ण के ये तीनों रूप मर्त्यलोक की मधुरता, द्युलोक की महानता और सागर की गंभीरता के प्रतीक कहे जा सकते हैं, जिनका समन्वयात्मक रूप उस महान् व्यक्तित्व के रूप मे जन-सुलभ हुआ, जिसे हम 'कृष्ण' कहते हैं।

ब्रज की वीथियो में विहार करने वाले बालगोपाल ने जितनी गहरी छाप जन-मानस पर डाली है, उतनी उनके अन्य रूपों ने नहीं। जन्म से लेकर वसुदेव-देवकी की बंधन-मुक्ति तक का समय, जिसमें कृष्ण ने ब्रज में अनेक मधुर लीलाएँ कीं, सबसे अधिक रोचक था। भारतीय कवि और मूर्तिकार, शिल्पी और संगीतकार—सभी ने अपनी अपनी भावना के अनुसार इस आकर्षक रूप का वर्णन किया है। भागवतकार एवं सूरदास जैसे महाकवियो ने तो नदनंदन गोपाल की लीलाओ का अत्यन्त विशद वर्णन किया है, जिसे पढ़कर भावुक जन आनंद-

प्राक्कथन

एक दिन, अनायास ही, हृदय में कोई बोल उठा कि भगवान् श्रीकृष्ण की प्रियतमा 'राधा' के सम्बन्ध में कुछ लिखना चाहिये। तभी उर-तंत्री के तार झनझना उठे। मेरे जैसे अनधिकारी व्यक्ति के लिये यद्यपि यह कार्य अत्यन्त दुरूह तथा अगम्य जान पड़ा, परन्तु प्रेरणा बलवती थी, इसकी विजय हुई और लेखनी चल पड़ी अनिर्दिष्ट दिशा में . न जाने किस प्रकार मैं कुछ लिख सका। और अब, जबकि कुछ विद्वानों और सुहृदों ने यह बताया कि यह महाकाव्य होचला है, तब एक बार अंतर्पट पर प्रसन्नता की लहर दौड़े बिना न रह सकी।

इसका अधिकांश घटनात्मक वर्णन 'गर्ग संहिता' पर आधारित है। अपनी पौराणिक आस्था के कारण मुझे गोलोक वर्णन में भी एक विशेष आकर्षण लगा और समझता हूँ कि उसमें 'गर्ग संहिता' के श्लोकों का सार-रूप ग्रहण कर लेने से सम्भवतः ग्रन्थ में पूर्णता आसकी हो।

'राधा' को कुछ लोग परकीया भी मानते हैं, परंतु ब्रज के सभी मुख्य सम्प्रदाय भगवान् श्रीकृष्ण की स्वकीया के रूप में ही उनकी आराधना करते हैं। 'गर्ग संहिता' में भी, भांडीरवन में ब्रह्मा के द्वारा राधा-कृष्ण विवाह का उल्लेख किया गया है। प्रस्तुत ग्रन्थ में, मैं भी उन्हें प्रभु की स्वकीया मान कर ही चला

हैं। कृष्ण और राधा एक हैं, उनका विहार नित्य है। राधा का श्रीकृष्ण से कोई पृथक अस्तित्व नहीं। ब्रह्मवैवर्त पुराण में भगवान् स्वयं कहते हैं:—

> त्वं मे प्राणाधिका राधे त्वं परा प्रेयसी वरा।
> यथा त्वं च तथाहं च भेदो नास्त्यावयोर्ध्रुवम्॥

'राधे! तुम मेरे प्राणों से भी अधिक प्रिय हो और परम प्रेयसी हो, जैसी तुम हो, वैसा ही मैं हूँ। तुम में और मुझ में कोई भेद नहीं है।'

ब्रह्माजी ने भी कहा है:—

> त्वं कृष्णार्द्धाङ्गसम्भूता तुल्या कृष्णेन सर्वतः।
> श्रीकृष्णस्त्वन्मयो राधे त्वं राधा त्वं हरिःस्वयम्॥

'तुम कृष्ण के अर्द्धाङ्ग से प्रकट हो, सब प्रकार कृष्ण के समान हो, श्रीकृष्ण राधामय हैं और राधा कृष्णमय हैं।'

ब्रज में, अनेक सम्प्रदायों के अनुयायी 'राधा' को ही अपनी इष्टदेवी मानते हैं और स्वयं में भी नारी भाव मानते हुए उनकी आराधना करते हैं। वे, उन्हें परिपूर्ण शक्ति सिद्धि अथवा माया मान कर उपासना करते हैं। गर्गसंहिताकार भी उन्हें परिपूर्ण कहते हैं:—

> रमयातु रकारः स्यादाकारस्त्वादि गोपिका।
> धकारो धरयाहिस्यादाकारो विरजा नदी॥
> श्रीकृष्णस्य परस्यापि चतुर्द्धा तेजसो भवत्।
> लीला भूः श्रीश्च विरजा च तस्नः पत्न्य एवाहि॥

जिस पर इनकी कृपा होती है, वह परमधाम प्राप्त कर लेता है। जो व्यक्ति राधा को न जान कर कृष्ण की आराधना करना चाहता है, वह अति मूर्ख, मूढ़तम है। श्रुतियां इनके निम्न अट्ठाईस नाम बताती हैं:—

> राधा रासेश्वरी रम्या कृष्णमन्त्राधि देवता।
> सर्वाद्या सर्ववन्द्या च वृन्दावनविहारिणी॥
> वृन्दाराध्या रमाशेषगोपीमण्डल पूजिता।
> सत्या सत्यपरा सत्यभामा श्रीकृष्णवल्लभा॥
> वृषभानुसुता गोपी मूलप्रकृतिरीश्वरी।
> गान्धर्वा राधिकाऽऽरम्या रुक्मिणी परमेश्वरी॥
> परात्परतरा पूर्णा पूर्णचन्द्रनिभानना।
> भुक्तिमुक्तिप्रदा नित्यं भवव्याधिविनाशिनी॥

'राधा, रासेश्वरी, रम्या, कृष्णमंत्राधिदेवता, सर्वाद्या, सर्ववन्द्या, वृन्दावन विहारिणी, वृन्दाराध्या, रमा, अशेषगोपीमण्डलपूजिता, सत्या, सत्यपरा, सत्यभामा, श्रीकृष्णवल्लभा, वृषभानुसुता, गोपी, मूलप्रकृति, ईश्वरी, गान्धर्वा, राधिका, आरम्या, रुक्मिणी, परमेश्वरी, परात्परतरा, पूर्णचन्द्रनिभानना, भुक्तिमुक्तिप्रदा और भवव्याधिविनाशिनी।'

यह तो रहा 'राधा' के प्रति धार्मिक दृष्टिकोण, अब कुछ आधुनिक दृष्टिकोण से भी इस पर विचार करना आवश्यक है। कुछ विद्वानों की धारणा है कि कृष्ण विषयक श्रीमद्भागवत प्रभृति ग्रन्थों में राधा का उल्लेख नहीं है, अतः राधा के चरित्र की, कवियों द्वारा कल्पना की गई है। वास्तव में राधा-कृष्ण

का स्वरूप अलौकिक है। दर्शन की अपेक्षा काव्य अधिक बोधगम्य एवं मार्मिक होता है, कदाचित् इसीलिये राधा का स्वरूप साहित्य मे जितना विकसित हुआ, उतना दर्शन ग्रन्थो में नहीं हो सका। परंतु ऐसा कोई कारण नहीं कि श्रीमद्भागवत में राधा का नामोल्लेख न हो तो गर्ग संहिता, ब्रह्मवैवर्तपुराण प्रभृति ग्रन्थों को नितांत असत्य मान लिया जाय।

'गीतगोविंद' मे भी हमें राधा के दर्शन होते हैं। राधा-कृष्ण के अलौकिक स्वरूप का चित्रण ही इस काव्य की आत्मा है। विद्यापति की दृष्टि में भी राधा के तीन लौकिक रूप थे— अबोध राधा, तरुणी राधा और फिर कृष्णमयी राधा। परंतु सूरदास उनके दार्शनिक रूप के उपासक रहे हैं। उन्होने हिन्दी-संसार को जो अमृत-घट प्रदान किया है, उसमे, राधा, माया की प्रतीक हैं। उनका भक्त-हृदय अकस्मात् ही पुकार उठा है—

> हमारे आंखन के तारे,
> राधामोहन मोहन राधाए दोऊ रूप उजारे।

ब्रज के वह संत महात्मा भी श्रीप्रिया-प्रियतम के नित्य-परिकर स्वरूप थे, अनन्य रस के उपासक और नित्य रास के अधिकारी थे। इनमे से कितनो को ही प्रिया-प्रियतम के साक्षात् दर्शन हो चुके थे।

प्रिय-प्रवासकार 'हरि औध' राधा के रूप की शोभा वर्णन करते हुए कहते हैं—

> रूपोद्यान प्रफुल्ल-प्राय-कलिका राकेन्दु बिम्बानना।
> तन्वंगी कल-हासिनी सुरसिका क्रीड़ा-कला पुत्तली॥

और फिर 'सहृदया यह सुन्दर बालिका, परम कृष्ण समर्पितचित्त थी।' से राधा के कृष्णमय जीवन की एक झांकी मिलती है।

राधा, माधवमय थी, प्रेममय थी, त्यागमय थीं। उनके लौकिक जीवन में त्याग का जो रूप दिखाई देता है, वह उत्कट है। त्यागमय जीवन चिन्तनमय होता है, चिन्तन से बुद्धि चरम सीमा की ओर बढ़ती है। इसीलिये उनमें भक्ति और ज्ञान की अनुभूति स्वाभाविक है। राधा के यही आदर्श मुझे उनका चरित्र लिखने में सहायक हुए हैं।

अपने काव्य के नवम सर्ग में, राधा-अक्रूर-सम्वाद से, मैं अपने कवि के अधिकार को प्रयोग करने से भी न रह सका। गर्ग-संहिता के कृष्ण मथुरा यात्रा से पूर्व राधा को अपने जाने का समाचार देते हैं। परंतु विरह-संतप्ता राधा का अक्रूर से कुछ न कह सकना मुझे अखरा। उस अक्रूर से, जो अपनी आत्मा को कुचल कर, कंस की कठोर तथा अनुचित आज्ञा का पालन कर रहा था, राधा के यह शब्द क्या अनुचित होंगे?—

'कंसराज की कपट योजना के भी साथी हो तुम शूर।'

उन्होंने अक्रूर को क्रांति की ओर प्रेरित किया, उसे नीति समझाई, परंतु अंत में उसकी अकर्मण्यता देखकर वे निराशा से कह उठीं—

सच्चे यदुवंशी हो तो कुछ करके तुम भी दिखलादो।
या इन सब ब्रज-वनिताओं को ले चल कर वध करवा दो॥

आधुनिक कवियो ने भगवान् श्रीकृष्ण के चरित्र को भी अतिरंजित कर दिया है। कुछ किम्वदतियो तथा पद्यो द्वारा उनके आदर्शवाद को निरर्थक करने की चेष्टा की गई है। परन्तु उनके चरित्र पर टीका टिप्पणी करने की अपेक्षा यदि विचार पूर्वक मनन किया जाय तो वह अवश्य ही गूढ और रहस्यमय पाया जाता है। श्रीमद्भागवत मे उन्होने गोपियो से स्पष्ट कहा है:—

श्रवणाद्दर्शनाद्ध्यानान्मयि भावोऽनुकीर्तनात्।
न तथा सन्निकर्षेण प्रतियात ततो गृहान् ॥

'मेरे प्रति श्रवण, दर्शन, ध्यान और कीर्त्तन मे जैसा भाव रहता है, वैसा पास रहने में नहीं रहता, इसलिये तुम अपने अपने घर को लौट जाओ।

इसी प्रकार मेरे अतर के भगवान् भी गोपियो से कह उठे:—

है नेह सदा से ही पावन, पर, नहीं वासना हो उसमे।
वह नेह सदा बनता कलक, आरुचित-कामना हो जिसमें॥

ऐसे ही कुछ भाव अपने प्रस्तुत काव्य में व्यक्त करने की मैंने चेष्टा की है। श्रीराधा के गूढतम चरित्र का यथा रूप वर्णन करना मेरी तुच्छ बुद्धि से बाहर की बात है। परन्तु हृदय की प्रेरणा से क्या नहीं हो जाता? प्रेरणा में ही भावना की अनुभूति है। मन जो कहे, वही करते चलना इस देह का धर्म है। अन. मै भी मन की प्रेरणा से लिखने बैठा तो थोड़ा थोड़ा लिखता ही चला गया। यद्यपि स्वयं नहीं जानता कि इसमें, मैं कहा तक सफल हो सका हूँ इसका निर्णय तो पाठक ही करेंगे।

मैं जानता हूँ कि इसमें अनेक त्रुटियां और अशुद्धियां रही होंगी। परंतु मेरे जैसे अल्पज्ञ के द्वारा त्रुटियों का रहना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। मुद्रण में भी कुछ अशुद्धियां रह गई हैं, उनका तो मुझे भी ध्यान है, परंतु उनका सुधार आगामी संस्करण में ही सम्भव है। इस संस्करण में जो सुधारी जा सकती थीं, वे सुधार दी गई हैं। लेटिन सम्बन्धी त्रुटियों पर भी यदि मुझे कुछ कृपालु विद्वज्जनों के सुझाव और परामर्श मिले तो मैं उनका सहर्ष स्वागत करूँगा।

अंत में, मैं अपने उन सुहृद मित्रों, पंडित जनों तथा परामर्शदाताओं को, जिन्होंने मुझे इस कार्य में प्रोत्साहित किया है, हृदय से धन्यवाद देता हुआ सदैव कृपा बनाये रखने की प्रार्थना करता हूँ।

कृपाकांक्षी

मथुरा
राधाष्टमी २००६ वि०

दाउदयाल गुप्त

दाऊदयाल गुप्त

मंगलाचरण

शंकर-सुवन ! मंगल-सदन !
गजवदन एक रदन विभो !
करिये अनुग्रह-शीश पर
रस वरद कर अपना प्रभो !!

हे शारदे ! इस दास पर
भी तो दया की दृष्टि हो ।
अब वृद्धि हो सद् ज्ञान की
शुभ काव्य रस की वृष्टि हो ॥

करो रे मन ! राधा राधा गान ।
रासेश्वरी रूप अति अद्भुत
राधस् शक्ति महान ।
वही मालना—मम मानस में
'मूर्ति' बसे छविमान ।
करो रे मन ! राधा राधा गान ॥

प्रथम सर्ग

अम्ब ! मुझको शक्ति दो
वर्णन करूं मैं यश तुम्हारा।
फंस रहा आसक्ति में
अज्ञान से चलता न चारा ।।

काव्य रस के मनन से
वंचित रहा मैं आज तक हूं।
भक्ति या सौजन्यता
सद्ज्ञान सद्गुण से विरत हूँ ।।

चल रहा हूँ आज तो
मैं साधना की राह लेकर।
मार्ग मुझको दो बता
माता! नया उत्साह देकर॥

दो मुझे वर सत्य हो-
जाये सभी यह स्वप्न धारा।
अम्ब! मुझको शक्ति दो
वर्णन करूँ मैं यश तुम्हारा॥

शब्द निकलें वह कि हो-
जायें प्रफुल्लित प्राण जिसमें।
गूञ्ज जायें स्वर कि हो-
जायें द्रवित पाषाण जिसमें॥
भावना भरदे हृदय
में जागरण की वह निराली।
प्राणियों को नेह से
अर्पण करे वह प्रेम-प्याली॥

किंतु यह हो पायगा
तब ही, मिलेगा जब सहारा।
अम्ब! मुझको शक्ति दो
वर्णन करू मैं यश तुम्हारा॥

किंतु, कुछ भ्रमपूर्ण-सी
भी बन न पायें कल्पनाऐं।
दें मुझे जीवन नया
उत्थान की यह धारणाएँ॥
सत्य शिव सुन्दर सरल
बन जाँय सारी पंक्तियाँ जब।
पथ-प्रदर्शक और शुभ-
प्रेरक बनें सब उक्तियाँ जब॥
हो सकेगा तब सफल
भर जायगा सौंदर्य सारा।
अम्ब! मुझको शक्ति दो
वर्णन करूँ मैं यश तुम्हारा॥

मोह-ममता में फंसा
मन, भक्ति को लाये कहां से?
काम की रसना लगी
तो दोष बिसराये कहां से?
क्रोध का संचार है
तो शांत-रस आये कहां से?
पाप छाया है हृदय
में, धर्म उपजाये कहां से?

यह तभी होगा कि जब
बहने लगेगी भक्ति धारा ।
अम्ब ! मुझको शक्ति दो
वर्णन करूँ मैं यश तुम्हारा ।।

धर्म क्या है ? यह कभी
भी जान पाया मैं नहीं हूँ ।
सत्य क्या है ? यह हृदय
के मध्य लाया मैं नहीं हूँ ।।
जानता नहिं प्रेम से
भगवान का भी नाम जपना ।
तो बताओ लिख सकूँगा
मात ! कैसे ग्रन्थ अपना ?

अब उबारो तो उबारो
डूबता जाता सितारा ।
अम्ब ! मुझको शक्ति दो
वर्णन करूँ मैं यश तुम्हारा ।।

न्यून अनुभव अल्प शिक्षा
की समस्या आगई है ।
हीनता की भावना
मेरे हृदय पर छागई है ।।

जब नहीं उत्साह है
तो हृदय में उल्लास कैसा ?
जब नहीं है भावना
ही तो कहो ! विश्वास कैसा ?

पा सका अब तक न मैं
उत्कृष्ट जीवन का किनारा।
अम्ब ! मुझको शक्ति दो
वर्णन करूं मैं यश तुम्हारा ॥

बन गया निष्प्राण जीवन
प्राण फूंके कौन उसमें ?
घूमता है जो कसकती
वेदना ले मौन उसमे ?
यातनाएं बढ़ गईं
वे आह बन कर आगईं जो।
रुक न पाईं आंधियां
तूफान बन कर छागई जो ॥

बस निराशा ही निराशा
में रहा जीवन हमारा।
अम्ब ! मुझको शक्ति दो
वर्णन करूं मैं यश तुम्हारा ॥

तो गई विधि पर धरा
बोली वहां—'रक्षा करो तुम।
होरहे हैं पाप अति
सताप अब मेरा हरो तुम॥'

तब कहा विधि ने-'धरा!
रख धैर्य, प्रभु हरि पर चलेंगे।
पापियों का नाश कर
सब संकटो को वे हरेंगे।'

साथ ले शिव, इन्द्र, सुर-
गण वे चले वैकुंठ आये।
अग्र रख कर भूमि को
सब ने वहां मस्तक नवाये॥

फिर कहा कारण सभी
बोले-'प्रभो! रक्षा करो तुम।
पाप भारी बढ़ गये
सताप पृथ्वी का हरो तुम॥'

विष्णु बोले-'देवताओ!
तुम सभी गोलोक जाओ।
जो, धरा को कष्ट हैं
श्रीकृष्ण को वह सब सुनाओ॥

धर्म-रक्षा के लिये
वे कार्य सब पूरे करेंगे।
खलों का संहार कर
भू-भार को वे ही हरेंगे॥'

रह गये निस्तब्ध सब
बोले 'प्रभो! क्या आप कहते?
जानते उनको न हम
गोलोक में जो कृष्ण रहते॥

आपको परिपूर्ण प्रभु
हम जानते आये सदा से।
उच्च इस वैकुंठ को
ही मानते आये सदा से॥
जब यहा भी है न 'हाँ'
सतोष फिर लायें कहा से?
मार्ग भी देखा न हम-
ने, तो वहा जायें कहा से?'

तब कहा हरि ने-'चलो
अब धैर्य लाओ देवताओ!
छोड कर चिंता व्यथा
मन की, हमारे साथ आओ॥

चल दिये सब साथ उन-
के, मार्ग अद्भुत-सा पड़ा था।
विश्व का वैचित्र्य लख
आश्चर्य सब को ही बड़ा था॥
यह सभी ब्रह्मांड उस
गोलोक से नीचे बसा था।
जो लुढ़कता तैरता-
सा सिंधु-जल में बिंब-सा था॥

सामने उसके उन्होंने
आठ पुर देखे मनोहर।
दिव्य रत्नों से अलङ्कृत
लग रहे परिकोट सुन्दर॥

फिर सुरों ने देख पाया
गहन विरजा का किनारा।
रत्नमय सोपान जिस-
की, स्वच्छ सुन्दर घाट सारा॥
फिर वहां आये जहा
वह श्रेष्ठ नगरी थी सुहाती।
कोटिशः मार्तंड सी
आभा जहा पर जगमगाती॥

सहस आनन शेष जिन-
का वेश भी अद्भुत महा था।
यह सुखद गोलोक जिन-
के अंक में स्थित होरहा था॥

देख कर वह तेज अतुलित
देवगण विस्मित हुए थे।
कर नमन आगे बढ़े
वे द्वार पर उसके गए थे॥

द्वार-रक्षक ने कहा—
'जाता नहीं कोई यहां है।'
देवगण बोले-'उपस्थित
लोकपाल सभी यहां हैं॥

आगये श्रीकृष्ण के ही
दर्शनों को हम यहां पर।
इसलिये आना हमारा
दो बता उनको वहां पर॥'

आगई चन्द्रानना
बोली—'यहां क्यों आप आये?
आरहे किस अंड से
किस अंड का संदेश लाये?'

देवगण बोले तभी—
'क्या अन्य कोई अण्ड भी है ?
जानते हम एक को
बस जो विदित ब्रह्माण्ड ही है ॥
देख भी पाये न हम
तो, अन्य कोई अण्ड अब तक ।
फिर कहो ! कैसे बतायें
जान लें नहि भेद जब तक ॥'
तब कहा चन्द्रानना
ने–'आप क्यों भरमा रहे हैं ?
सृष्टि में प्रभु की करोड़ों
अण्ड ही तो छा रहे हैं ॥
अण्ड सब के ही प्रथक
हैं, जान पाये तुम न कैसे ?
नाम-ग्राम न जानते
यों बन रहे अज्ञान जैसे ॥
जानते हो एक ही
ब्रह्माण्ड को, रहते सभी त्यों ।
हर उदम्बर में मिलेंगे
सैकड़ो भुनगे भरे ज्यों ॥

वापि युत वे कूप वापि
तड़ाग सब उपवन घने थे।
स्वच्छ सुन्दर और
आकर्षक सभी वे गृह बने थे॥

द्वार पर जिनके बंधीं
जो कामधेनु सुवत्स युत थीं।
श्याम श्वेत, सुरंग, चित्रित-
सी अलंकृत सुख निरत थीं॥

मानिनी मन-भावनी
थीं कामिनी सुन्दर सलोनी।
दिव्य शोभा थी वहा
की, अन्य लोकों मे न होनी॥

देवगण पहुचे, जहा
थे विश्व के ऐश्वर्यशाली।
थे चकित चित देख
कर अद्भुत अकथ शोभा निराली॥

सहस दल का पद्म सुन्दर
ज्योति-मण्डल में सजा था।
और उस पर षोडशा फिर
अष्ट दल का नीरजा था॥

राजते देखे यहाँ परिपूर्ण राधा-श्यामसुन्दर ॥ (पृष्ठ ३२)

बात सुन परिहास की
    वह, वे चकित-से रह गये सब ।
देख कर यह द्वार वन-
    की, विष्णु यों कहने लगे तब ॥
'अवतरे प्रभु हरिगर्भ
    न अखण्ड यह अविदित रहा है ।
हम यहीं पर वास करते
    सत्य यह हमने कहा है ॥'
गई सुन यह बात भीतर
लौट कर फिर आगई वह ।
लोकपालक सब सुरों को
शीघ्र संग लिवा गई वह ॥

देख कर गोलोक भीतर
    वे सभी विस्मित हुए-से ।
सुप्त-से कुछ जागते-
    से, चल रहे रुकते हुए-से ॥
रत्नमय गिरि-खण्ड युत
    था सुखद गोवर्द्धन जहां पर ।
था निकट बत्तीस वन
    युत, सघन वृन्दावन वहां पर ॥

वृक्ष मीठे फल सहित थे
पुष्प-पल्लव युत लताएँ।
चल रही थी वायु सुरभित
थीं सभी में दिव्यताएँ ॥

कूजते पक्षी विविध
शुभ गीत का आधार लेकर।
गूंजते मधुकर वहां
संगीत को साकार लेकर ॥

सुखद सुन्दर शुभ मनोहर
सघन वंशीवट वहां था।
नील वर्ण स्वच्छ यमुना
का सुपावन तट वहां था ॥

रत्न मणि-मंडित बनी
सोपान सुन्दर थीं जहा पर।
एक कछुआ शान्ति से
विश्राम करता था वहां पर ॥

कूल पर नौका खड़ी
टकरा रहीं जिसमें तरंगें।
वे उछलती थिरकती
थीं, भर रहीं उनमें उमंगें ॥

और उस पर भी बनी
थीं, तीन सुन्दर सीढ़ियां-सी।
रत्नमय उस पर बिछी
थीं, दो अलंकृत पीढ़ियां-सी॥
मणि-खचित यह अति सुशोभित
दिव्य सिंहासन मनोहर।
राजते देखे वहां—
परिपूर्ण राधा-श्यामसुन्दर॥

दिव्य-रूपा अष्ट सखियां
और अष्ट सखा सुहाते।
दिव्य ज्योति-प्रकाश में वे
छत्र सुन्दर जगमगाते॥

सेविकाएं ढोरतीं
थीं, चंवर स्वर्ण-सुरत्न-मंडित।
मन्द मुसकाते श्री मधुर
कर में हुई वशी सुशोभित॥
वाम अंग विराजतीं
श्री राधिका था वेश अद्भुत।
कंठ में भुज-दंड डाले
थे परस्पर प्रेम-संयुत॥

बोल पाते थे न, लगते-
शब्द शुद्ध उच्चारते-से।
होगये गद्गद् सभी वे
'त्राहिमाम्' पुकारते-से॥

'हे प्रभो अखिलेश अद्भुत
सगुण निर्गुण श्यामसुन्दर।
परम योगेश्वर मनोहर
श्रेष्ठ, हितकर सुखद शुभकर॥
आदि पुरुष अनंत अव्यय
ज्ञानमय परिपूर्ण ईश्वर।
भक्त-भावन पतित पावन
अति सुहावन राधिका वर॥

नाथ! अब भूलोक में
होने लगा शोषण अधिक है।
लोभ हर्षक पाप—
अत्याचार पर उतरे वधिक हैं॥
इन खलों ने सतजन
को कष्ट देकर सुख हरा है।
नाथ! अब तो पाप के
संताप से कंपित धरा है॥

दो दया अब तो दयामय
भार पृथ्वी का मिटाओ।
दो अभय वर संतजन को
नाथ ! संकट से छुड़ाओ ।।'

तब कहा श्रीकृष्ण ने—
'हे देवगण ! भय को विसारो।
आरहा हूँ शीघ्र ब्रज
में, गोप-गण का रूप धारो ।।

जन्म ले यदुवंश में,
मैं कार्य भक्तों का करूंगा।
देवकी का पुत्र होकर
भार पृथ्वी का हरूंगा ।।'

जब सुना श्रीराधिका ने-
जारहे हैं प्रभु वहाँ पर।
तो कहा-'कैसे रहूँगी
नाथ ! मैं इकली यहां पर ?'

कृष्ण बोले—'साथ मेरे
तुम प्रिये ! अवतार लोगी।
राधिका के रूप में हो
भूमि पर साकार होगी ।।

राधिका बोलीं–'प्रभो !
गिरिराज है अनुपम यहाँ, पर ।
नीलवर्णा स्वच्छ शीतल
अन्य है यमुना कहाँ पर ?
पुष्प-पल्लव-फल सहित,
यह सुखद वृन्दावन घनेरा ।
छोड़ कर इनको कभी
लग पायगा यह मन न मेरा ॥
इसलिये करिये वही
जिसमें भरा उपकार भी हो ।
हो धरा का कार्य भी
मुझपर प्रभो ! आभार भी हो ॥
कृष्ण बोले-'प्रिये ! तुम-
को कार्य जो लगता भला है ।
देखते ही देखते यह
भी सभी होने चला है ॥
सघन वंशीवट सहित
जो वृक्ष शोभा पारहे हैं ।
यह सुखद वृन्दाविपिन
गिरिराज ब्रज में आरहे हैं ॥

अब यहीं पर मन चला।
है, स्वच्छ यमुना का किनारा।
जारहा भूलोक में
गोलोक का ऐश्वर्य सारा॥'

पा गई संतोष राधा
प्राणपति के वाक्य सुन कर।
देरहीं थीं मौन स्वीकृति
निज हृदय के भाव चुनकर॥

थे मुदित यह देख कर
जयकार सब करने लगे थे।
प्रेम-विह्वल देवताओं
के हृदय भरने लगे थे॥

कह रही थी यों धरा—
'उपकार से प्रभु आपके क्या?
हो सकूँगी मैं उऋण
आंसू न हैं परिताप के क्या?

नाथ! युग-युग में किया
उपकार मेरा आपने ही।
ज्ञान से अज्ञान का
हर कर अंधेरा आपने ही॥

शीघ्रता अब हो प्रभो !
    तो जगत का कल्याण होगा ।
देर जितनी ही लगेगी
    कष्टमय यह प्राण होगा ॥'

बोले प्रभु—'अब धरा ! धैर्य से कार्य चलेगा ।
मन को कर आश्वस्त शीघ्र ही भार टलेगा ॥

भार टलेगा शीघ्र
    करुणा को दे
        छोड़ अभी तू ।

मन में निश्चय मान
    चिन्ता से मुख
        मोड़ अभी तू ॥'

करते जय-जयकार चले सब
    अपने-अपने धाम ।
सभी दिशाएँ गूँज उठी थीं—
    जय-जय राधेश्याम ॥

द्वितीय सर्ग

आवश्यक अब राधा के उद्भव को कहना ।
इससे पहिले मात-पिता का परिचय देना ।।
कान्य कुब्ज के भूप भलदन थे बडभागी ।
ज्ञानी, धर्मी, दानवीर थे उज्ज्वल त्यागी ।।
किन्तु, न थी संतान यही चिन्ता उर भारी ।
किया उन्होंने यज्ञ व्यथा थी सभी विसारी ।।
हवन-कुण्ड से हुई प्रकट तब कन्या सुन्दर ।
उसे देख कर हुए अत्यधिक विह्वल नृप वर ।।

सोचा—'प्रभु ने की है इच्छा पूर्ण हमारी ।'
कलावती या कीर्ति नाम रख भूप सुखारी ॥
इधर एक सुरभानु गोप रावल के वासी ।
जिनके गो-धन सहित पास थी अति धन राशी ॥
जिनके सुत वृषभानु हुए थे सुघड़ सलोने ।
पाई यश में ख्याति ज्ञाति के मध्य जिन्होंने ॥
चारण आये रावल में विरदावलि गाते ।
चित्र मांग कर वे कुमार का संग ले जाते ॥
वीरों का यश-गान किया करते स्वदेश में ।
घूम रहे सर्वत्र भलंदन के प्रदेश में ॥
राज-सभा में पहुंच वहां विरदावलि गाई ।
नृपति भलंदन ने कुल की सब सुनी बड़ाई ॥
बोले भूप-'अहो, चारण ! तुम जग में जाते ।
मेरी कन्या-योग्य मुझे वर नहीं बताते ?'
बोले चारण-'नृपति ! आज यह बात चली है।
कन्या कलावती सुन्दर मृदु एक कली है ॥
मैंने उसके योग्य एक वर व्रज में देखा ।
सुन्दर सुघड़ महान्, नहीं उपमा का लेखा ॥
नाम, धाम, वय, रूप, वंश, बल सभी बताया।
फिर चारण ने वही चित्र नृप को दिखलाया॥

बोले नृप-'है राजकुंवर सुन्दर बलशाली ।
इसे पासकेगी कोई शुभ लक्षण वाली ॥
सम्मत्यार्थ आज गुरुवर पर मैं जाऊंगा ।
बिना लिये आदेश नहीं कुछ कर पाऊँगा ॥'
लिया चित्र फिर विदा किया उनको हरषा कर ।
चारण गये 'धन्य' कहते धन इच्छित पाकर॥
राज काज कर पूर्ण इधर नृप गुरु पर आये ।
चित्र दिखा कर समाचार सब उन्हें सुनाये॥
बोले गुरु-'इन दोनों मे अति प्रीति रहेगी ।
निसदेह यह सुन्दर जोडी सुखी रहेगी ॥
पूर्व जन्म में भी यह दोनो एक रहे थे ।
घोर तपस्या करते कष्ट अनेक सहे थे ॥
सुनलो ! इनके पूर्व जन्म की गाथा पावन ।
कहता हूँ मैं तुमको यह इतिहास पुरातन ॥
नृग राजा का नाम नहीं किसने सुन पाया ?
नृप सुचन्द्र बलवान हुआ था उसका जाया।।
पित्रों की मानस उद्भूता तीन सुता थीं ।
सच्चरित्र गुणवान् कुशल व्यवहार युता थीं ॥
कलावती थी ज्येष्ठ सुता देदी सुचन्द्र को ।
द्वितिय रत्नमाला व्याही मिथिला-नरेन्द्र को॥

जिसके सीता हुई, राम जिनने वर पाये ।
जिनको हर कर रावण ने निज प्राण गवाये ॥
तृतिय मेनका हुई हिमालय की रानी थी ।
जिसकी पुत्री पार्वती जग ने जानी थी ॥
वह सुचन्द्र ले कलावती को वन में आया ।
द्वादश दिव्य वर्ष दम्पति ने प्रभु को ध्याया ॥
एक मानवी वर्ष सुरों का एक निशि दिवस ।
तेतालिस सौ बीस वर्ष देवों के द्वादश ॥
'वर मागो !' यों कह ब्रह्मा ने उन्हें उठाया ।
बोले नृप-'हे नाथ ! मोक्ष की करदो दाया ॥
कलावती ने कहा-'न कुछ आधार यहा है ।
पति के बिना भार्या का निस्तार कहा है ?
नहीं इसलिये मोक्ष भूप को मिल पायेगी ।
पति पायेगा मोक्ष, कहा पत्नी जायेगी ?
अपने स्वामी का वियोग मैं नहीं सहूँगी ।
दिया मोक्ष यदि इन्हें, शाप मैं तुमको दूगी ॥'
बोले ब्रह्मा-'कभी हमारा वचन न जाता ।
किन्तु, देवि ! मैं कोप भार से अति भय खाता ॥
ब्रह्मलोक के सुख भोगो पति के सँग जाकर ।
जन्मोगे फिर मर्त्य-लोक में अवसर पाकर ॥

होगी पुत्री हरण सकल संकट भव-बाधा ।
वह प्रकृति साक्षात् नाम होगा श्रीराधा ॥
नारायण जब व्रज में निज अवतार धरेंगे ।
कृष्ण रूप से उस कन्या को वरण करेंगे ॥'
जो सुचन्द्र था हुआ यहा वृषभानु वही है ।
तेरी कन्या कलावती या कीर्ति यही है ॥
सुखी हुए सुन भूपति छाई विह्वलता थी ।
दी विवाह वृषभानु संग निज कीर्ति सुता थी ॥
उन्हें देख वृषभानु हुए हर्षित मन भारी ।
समय प्राप्त कर हुई गर्भयुत वह सद्नारी ॥
श्रीराधा का जन्म-समय जब होने आया ।
सभी प्राणियों ने था तब आनन्द मनाया ॥

卐

समाचार नव लेकर नभचर उड़े व्योम में ।
राधा राधा रमा हुआ था रोम रोम में ॥
भादों मास सुरम्य अष्टमी थी सुखदाई ।
उत्सवमय था दिवस प्रकृति भी थी हरषाई ॥
शुक्ल-पक्ष की रैन उजेरी मन को भाती ।
देख-देख उल्लास तारिकाएँ मुसकातीं ॥

शुभ्र यामिनी ढलती पर करती आनंदित ।
भूपर चली समीर मनोहर शीतल सुरभित ॥
होने को था भोर रात्रि बीती जाती थी ।
शुभ बेला संदेश सुखद लेकर आती थी ॥
ब्रज ललनाएँ सुभग गीत सुन्दर गाती थीं ।
स्वस्तिक युत घट रखा नीर भर कर लाती थीं ॥
रावल के घर-घर मे बजते रहे बधाये ।
गोप-श्रेष्ठ वृषभानु देख मन में हरषाये ॥
बाल वृद्ध या युवक प्रफुल्लित सब नर नारी ।
मना रहे आमोद विविध वे मन-सुखकारी ॥
नव स्फूर्ति ले सभी कार्य करते परिचायक ।
श्रीराधा का जन्म हुआ सब को सुखदायक ॥

समाचार यह लेकर नभचर उड़े व्योम में ।
राधा-राधा रमा हुआ था रोम-रोम में ॥

चारण कुल यश-गान कर रहे मन हरषाते ।
कुल मे जितने जन्म हुए वे सब बतलाते ॥
क्या-क्या मिलता आया यह सब उन्हें सुनाया ।
लेंगे अब तो अवश न्यून से न्यून सवाया ॥
तब बोले वृषभानु-हुआ उद्भव पुत्री का ।
वही मांगना उचित लगे जो सब को नीका ॥

पुत्र-जन्म में सब का मन द्विगुणित हो जाता।
हो अशक्त भी, किन्तु, मांग पूरी कर पाता॥
पर, कन्या से कहो! कभी उल्लास बढ़ा है?'
चारण बोले-'नृप! पुत्रों का भाग्य बड़ा है॥
किया देश का कन्याओं ने भी मुख उज्ज्वल।
सबल कभी बन जाती है यह कन्या निर्बल॥
रुद्र कन्या से पितृ-वश भी शोभा पाता।
भारत का इतिहास हमें यह सब बतलाता॥
किया न क्या कन्याओं ने यह हमें बतादो?
वे पीछे कब रहीं, हमें यह ही समझादो?

समाचार यह लेकर नभचर उड़े व्योम में।
राधा-राधा रमा हुआ था रोम-रोम में॥

दिन में, एक अध-पत्नी ने किया अंधेरा।
पतिव्रत के बल पर जिसके नहि हुआ सवेरा॥
कन्या सावित्री भी तो थी परम पुनीता।
मरे पति के प्राण सत्य में यम को जीता॥
अनुसूया का सत्य परखते पालक तीनों।
ब्रह्मा, विष्णु, महेश बने थे बालक तीनों॥
सीता को क्या भूल कभी कोई पाता है?
जिनके यश को आदर से सब जग गाता है॥

मापारण कन्याओं में यह सुता नहीं है ।
आदि शक्ति ही स्वयं यहां अवतरित हुई है ॥'
सुन हर्षे वृषभानु भाग उनकी पर्दशोपी ।
भिक्षुक, रंक, अनाथ नारि थीं धन से पोषीं ॥
दे विप्रों को दान मोद मन भारी पाया ।
दिया उसे जो हार याचना करने आया ॥
बोले पंडित-'हुई हरण संकट भव बाधा ।
इस कन्या का नृपति ! नाम होगा श्रीराधा ॥'

समाचार यह लेकर नभचर उड़े व्योम में ।
राधा-राधा रमा हुआ था रोम रोम में ॥

रजत पालना डाल लिटाई कन्या उसमें ।
रूप छटा को देख हुई ब्रजबाला बस में ॥
कहें परस्पर 'रूप नहीं ऐसा देखा था ।
उपमा क्या दें व्यर्थ चन्द्रमा का लेखा था ॥'
जब श्रीराधा घुटनों के बल से चल पाईं ।
क्रीड़ा करें अनेक देख माता हरषाईं ॥
उनकी शिशुता लाँघ आयु बढ़ती जाती थी ।
चन्द्रकला की भांति स्वयं बढ़ती जाती थी ॥
कन्या-सुलभ कार्य जितने थे, राधा करतीं ।
जननी करती रोष, मिष्ट वाणी से हरतीं ॥

चैत्र सुहावन लगा, भक्ति विश्वास बढा था ।
गिरिजा-पूजन का मन मे उल्लास बढा था ॥
उपवन में गणगौरि पूजने -राधा जातीं ।
पुर-कन्याएं साथ साथ चलती थीं गाती ॥
मोर बोलते, कीर कहीं संगीत सुनाते ।
चलते सग विहग मुदित हो कलरव गाते ॥

समाचार यह लेकर नभचर उडे व्योम मे ।
राधा राधा रमा हुआ था रोम-रोम मे ॥

ऋतु वसंत अति सुखद लगे थी प्रिय मन-भावन ।
चली सुगंधित मद वायु शीतल अति पावन ॥
सभी पल्लवित वृक्ष, लगे था उपवन फूला ।
बल खा-खा कर बेल झूलती मानो झूला ॥
करतीं कलिका केलि सुमन सौरभ फैलाते ।
जिन पर मधुकर मत्त मधुर गुञ्जार सुनाते ॥
आम्र बौर की सुरभि पथिक को भी भरमाती ।
गिरते फल वे तुरत वायु जिनसे टकराती ।
वन-उपवन ने ओढ रखी हरियाली साडी ।
लगते पुष्प पलाश लाल चूं दी-सी गाढी ।।
दाडिम के फल फूल रग अपना दिखलाते ।
पके उदम्बर टूट स्वयं ही भू पर छाते ॥

राजादन के पीत मधुर फल मधपक्व-से थे।
मिष्ट तूत अपनी शिशुता तज कर विकसे थे॥
इधर परूपक लगे झाँकने यौवन उमगा।
आमलकी के मिले रंग में बैठे सुग्गा॥
समाचार यह लेकर नभचर उड़े व्योम में।
राधा-राधा रमा हुआ था रोम-रोम में॥

भक्ति सहित श्रीराधाजी गणगौरि पूज कर।
चलीं मांगती-'मात! मुझे घनश्याम मिलें वर॥'
सुन्दर युगल मराल ताल में मान हर रहे।
विविध विहंग निकुंजों मे गुण-गान कर रहे॥
'राधा राधा' रटती कोयल 'श्याम' कह उठी।
सघन आम्र पर मैना-'राधेश्याम' कह उठी॥
लगता—सभी दिशाओं ने रटनी-व्रत साधा।
सभी ओर बस 'श्याम-श्याम' थी 'राधा राधा'॥
हुई चकित चित देख वहां पर यह शुभ होनी।
सखियों संग भवन को चल दीं सुघड़ सलोनी॥
बीते मास अनेक तीज हरियाली आई।
वर्षा की ऋतु सुन्दर श्रेष्ठ मतवाली आई॥
पड़ती नभ से बूंद उल्लसित राधा मन में।
सखियों को ले साथ चली आईं उपवन में॥

विविध भांति के पुष्प पल्लवों से वन फूला।
पड़ा हिंडोला झूल रहीं श्रीराधा झूला॥

समाचार यह लेकर नभचर उड़े व्योम में।
राधा-राधा रमा हुआ था रोम रोम में॥

रिमझिम वर्षा में समीर करती आंदोलित।
आँधी रही न धूल, हुआ उद्यान सुशोभित॥
निद्दी निपुस की बेल लगे थी जो लहराती।
निबल डाल पर लदीं नाशपाती झुक जाती॥
पीत शुष्क से वृक्ष सभी वर्षा ने सींचे।
मिट्ठा, नक, अमरूद झुके पड़ते थे नीचे॥
पके फलों को तोड़ रहे थे पक्षी छूकर।
बिछे पड़े थे मिष्ट आम्र हरियाली भू पर॥
विकसे पुष्प कदम्ब सुखद सौरभ फैलाये।
कदली के वृक्षों पर भी मीठे फल छाये॥
पुष्प बकुल का खिला वायु से जब टकराता।
तब निखर कर सौरभ मन को मत्त बनाता॥
कूक रहीं थीं कोयल नव उल्लास सजोये।
चहक रहीं थीं चिड़िया मद में खोये-खोये॥
गातीं गीत मल्हार सखी सुन्दर मृगनयनी।
ले-ले झोंटे झूल रहीं राधा पिक बयनी॥

समाचार यह लेकर नभचर उड़े व्योम में ।
राधा-राधा रमा हुआ था रोम-रोम में ॥

बीती जब बरसात लगा आसौज निराला ।
सांझी का त्यौहार मनाती थीं ब्रजबाला ॥
गातीं रुचिकर गीत राधिका संग सहेली ।
साजी पूज रहीं मिल कर सुन्दर अलबेली ॥
कई मास फिर बीत गये आया बसंत था ।
सदा-सदा से चलता परिवर्तन अनंत था ॥
हुआ उष्ण कुछ दिवस प्रकृति ने ली अँगड़ाई ।
मोती कलिका खोल रहीं आंखें अलसाई ॥
जिन्हें जागती देख चले मिलने को मधुकर ।
करते मधु की चाह छागये वन-उपवन पर ॥
अन्तरतम की प्यास गरल से कभी बुझी है ?
किन्तु, मोह ममता में यह आशा उलझी है ॥
गुड़ियों का शृंगार सजा कर सभी कुमारी ।
खेल रहीं थीं खेल मुदित थीं मन में भारी ॥
ज्यों ज्यों होतीं बड़ी, अनेकों क्रीड़ा करतीं ।
कालिन्दी के कूल सहेली-संग विचरतीं ॥

समाचार यह लेकर नभचर उड़े व्योम में ।
राधा राधा रमा हुआ था रोम-रोम में ॥

卐

कालिंदी का सुखद किनारा अति उज्ज्वल था।
इठलाता-सा जहां हिलोरें लेता जल था॥
राधा सुनतीं शब्द सरस जल का कल-कल सा।
उस कछार पर जा बैठीं जो था समतल-सा॥
मदमाता-सा लगा तरंगों का वह जीवन।
अस्थिर-सी उन्मुक्त, गईं वे उच्छृंखल बन॥
किन्तु कूल के सुप्त नीर से मिला न साधन।
यों जिनका नैराश्यपूर्ण था पुनरावर्त्तन॥
राधा बोलीं तब–'यह कैसी हाय! निराशा?
तट के इस निष्प्राण नीर से रही न आशा॥
उन लहरों ने जिससे पाया नहीं सहारा।
जीवन का उन्माद लुटाये लौटीं सारा॥
कभी कायरों में भी कुछ उत्कर्ष रहा है?
प्राण नहीं जिसमें वह जीवन व्यर्थ रहा है॥'
'नई नहीं यह बात सखी!' यों ललिता बोली-
'मानव का भी पतन सदा ही बना ठठोली॥
निर्बल ठुकराया जाकर भी कायर बनता।
सबल कहाता वीर वही निर्बल को हनता॥
मनमानी भी सदा वीर ही तो कर पाते।
नहीं आत्मा झुकती, तो हथियार झुकाते॥

किन्तु, बताओ ! निर्बल प्राणी क्या जीता है ?
सहता अत्याचार सदा आमू पीता है ।।'
राधा बोली—'कायर से कल्याण न होगा ।
वीर न होंगे भू पर तो उत्थान न होगा ।।
कठिन नहीं क्या राजनीति की सरिता तरना ?
किन्तु, उचित है निर्बल की भी रक्षा करना ।।
जाने निज कर्त्तव्य वीर तो वही कहाता ।
कोई सच्चा वीर निबल को नहीं सताता ।।

वीर सताते नहीं निबल को
दे निज प्राण बचाते ।
निरपराध को वही सताते
जो होते मदमाते ।।
धर्म यही है, कर्म यही है—
दु:ख सभी के हरना ।
शरणागत या अल्पमतों की
भरसक रक्षा करना ।।
पर वे भी होवें सत्यनिष्ठ,
कर्त्तव्यनिष्ठ शुभ-कर्मनिष्ठ ।
जो नहीं प्रजा या और राष्ट्र का,
करें स्वप्न में भी अनिष्ट ।।

—:※:—

तृतीय सर्ग

अब यह बताना है उचित
वह ग्राम रावल है कहां ?
वृषभानु के गृह में हुईं
उत्पन्न श्रीराधा जहां ॥

कालिंदी के कूल बसा
ब्रज-वन मे सुन्दर रावल ग्राम।
जहां हुईं अवतरित हरि-प्रिया
आदि शक्ति राधा सुख-धाम ॥

वह ब्रज जहां श्यामसुन्दर–
मनमोहन ने अवतार लिया ।
वह ब्रज जहा भक्त-भावन ने
दुष्टों का सहार किया ॥
वह ब्रज जहा कभी घर घर मे
कामधेनु पलती रहतीं ।
वह ब्रज जिसके ग्राम–ग्राम में
गो–रस की नदियां बहतीं ।
वह ब्रज जहा नहीं होता था
पशुओ का बलिदान कभी ।
वह ब्रज जहा भरा रहता था
घर घर मे धन–धान कभी ॥
वह ब्रज जहा कृष्ण ने खेली
गो–रस माखन से होली ।
वह ब्रज अतिलालित्य पूर्ण है
जिसकी हेलामय बोली ॥
बीते बल–वैभव की जिसके
खडहर दिला रहे हैं याद ।
कहते-से लगते अतीत की
गाथा वे टूटे प्रासाद ॥

इस ब्रज ने भी कभी देख-
पाये थे भीषण जन-संहार ।
शोणित पीकर प्यास मिटा
पाई जय वीरों की तलवार ॥
रक्त-स्नान अनेक हुए हैं
इस ब्रज के भी अंचल में ।
धोये थे हथियार कभी
वीरों ने इस यमुना जल में ॥
नील स्वच्छ कालिंदी लगती
तब ओढ़े रक्तिम चादर ।
रक्त बिन्दु रज कण में चमकें
लगते लाल-लाल स्यादर ॥
नहीं टल सके रण-बादल
जो घटाटोप सिर पर छाये ।
बचा नहीं यह उनसे भी
जो परिवर्तन होते आये ॥
इस ब्रज ने भी झेले हैं
आततायी के अत्याचार ।
रण-विजयी उन्मत्तों ने
खेले थे खेल अनेक प्रकार ॥

दवा सका, पर, वधिक नहीं
मानव की आह कृपाणों में।
दबी आग, पर रही सुलगती
चिंगारी इन प्राणों में॥
क्रांति बनी थी कभी वही जो
चिंगारी आगे जाकर।
करती आई भस्म सदा—
शोषक को वह जन-बल पाकर॥
कभी यहां भी लग पाया था
राजनीति का वृक्ष गहन।
कभी विश्व का रंगमंच भी
बन पाया था यह ब्रजवन॥
जैसे इस ब्रज ने शोषित—
जनता के वे मरघट देखे।
वैसे ही कालांतर में
विद्वानों के जमघट देखे॥
ब्रज में वेदाध्ययन* तथा
सांस्कृतिक कार्य होता आया।
जगता था भारत का ब्रजवन
जब सब जग सोता आया॥

यह व्रज औरों के सम्मुख भी
रख पाया आदर्श अनेक ।
किन्तु, आज वे सभी बने हैं
कहने भर को गाथा एक ॥
इस गोपित, पर जागृत व्रज में
बसता है यह रावल ग्राम ।
जहा हुई अवतरित हरि-प्रिया
आदि शक्ति राधा सुखधाम ॥

卐

अति पावन इस व्रज-मंडल की
मथुरा रही राजधानी ।
कभी जहा पर चल पायी थी
कंसराज की मनमानी ॥
जिसने निज भगिनी पर भी
ढाये थे भारी अत्याचार ।
निरपराध ही पति पत्नी—
दोनो को देकर कारागार ॥

सुन कर शिशु का जन्म शीघ्र-
यह कारागृह को धाता था।
कितने ही सुत वध कर डाले
फिर भी शांति न पाता था॥
अष्टम सुत श्री कृष्ण हुए तब
कारागृह के खुले कपाट।
अति सुख में गद्गद दंपति ने
देखी विश्व-विभूति विराट॥
तभी स्वयं चटचट करतीं-
कर की हथकड़ियां टूट गईं।
खुले तुरत बंधन सारे
पैरों की बेड़ी छूट गईं॥
बोले प्रभु-'हे तात! मुझे-
गोकुल में पहुंचाना होगा।
नंदराय की कन्या को-
बदले में ले आना होगा॥'
तभी उठे वसुदेव अंक में
लेकर अपना अद्भुत लाल।
देखा—निद्रा में सोते हैं
कारागृह के द्वारपाल॥

कालिंदी का वेग देख कर
ठिठके मन में भय खाते।
पीछे पड़ते पांव किन्तु वे
आगे ही बढ़ते जाते ॥
नंद-भवन के बाहर-भीतर
सब को ही सोते पाया।
लीलामय की लीला का तब
ध्यान इन्हें कुछ हो आया ॥
निकट यशोदा के सोती
कन्या को तुरत उठाया था।
हृदय कठोर बना कर अपने
सुत को शयन कराया था ॥
चले सिसकते चिंता करते
और झिझकते सकुचाते।
कोई देख न ले घर से—
चलते, कन्या को लेजाते ॥
करते तर्क-कुतर्क मार्ग में
आ पहुचे वे किसी प्रकार।
बंद हुआ जो खुला हुआ था
अब तक कारागृह का द्वार ॥

कहा देवकी से—'लो भद्रे !
कैसी अद्भुत ललना है ?
कन्या है या यह भी उस—
जगदीश्वर की कुछ छलना है ?'
लेकर अपने अंक देवकी
इकटक उसको रही निहार।
तभी उच्च-स्वर में रोई वह
गूंज उठा था कारागार ॥
बोले तब वसुदेव—'वधिक की
असि इस के सिर छायेगी।
इन नयनों के सम्मुख ही
यह कन्या मारी जायेगी ॥
सम्भव है-कन्या विलोक कर
ले न सके वह इसके प्राण।
किन्तु पिघलते देखे हैं क्या
कभी किसी ने भी पाषाण ?'
उठा बेड़ियां हथकड़ियाँ—
पहनीं, बंधन होगये कड़े।
नव शिशु का रोदन सुनते ही
सोते प्रहरी जाग पड़े ॥

उठा कंस विक्षिप्त हुआ-सा
समाचार उनसे पाकर ।
झपटी कन्या तुरत देवकी
के कर से उसने आकर ।।

कहा देवकी ने—'प्रिय भ्राता !
कन्या को दो जीवन-दान ।
गगन गिरा के मिथ्या होने
का है यह प्रत्यक्ष प्रमाण ।।

है अबोध भोली निर्बल
यह क्या अनिष्ट कर पायेगी ?
यह तो याचक सदा रहेगी
जय-जयकार मनायेगी ।।'

हँसा कंस, बोला—'भय से
आ सका नहीं भगवान् यहां ।
भेजी दूती, जिसका इस—
असि से होगा सम्मान यहां ।।'

पकड़ एक पद यह कन्या
पत्थर पर तुरत पछाड़ी थी ।
छूटी कर से, चली गगन में
जाकर वहां दहाड़ी थी ।।

"अरे कंस ! निर्बल जन को क्यों
बनता जाता है विकराल ?
सावधान हो—गोकुल में अब
प्रकट हो चुका तेरा काल ॥"

चौंका, चला भवन अपने को
मन में करता-सा चिंतन ।
वे भी मानव धन्य ! वैर-वश
कर लेते प्रभु का सुमरन ॥

प्रभु-चिंतन के लिये श्रेष्ठ
इस व्रज में ही है रावल ग्राम ।
जहां हुईं अवतरित हरि-प्रिया
आदि शक्ति राधा सुखधाम ॥

卐

अति पावन गोवर्द्धन पर्वत—
स्थित है जिसके अचल पर ।
स्वच्छ नीलवर्णा कालिंदी
बहती जिसके भूतल पर ॥

कहीं झाड़-झंखार खड़े हैं
यमुना कूल कछार कहीं।
कहीं भूमि समतल दिखलाती
ऊँचे नीचे ग्वार कहीं॥

सुन्दर वन है, कीर जहां
बैठे कदम्ब की डालों पर।
भ्रमर रहे गुंजार जहां
पुष्पों से निर्मित हारों पर॥

फूंका करती वशीकरण का
मन्त्र जहां मुरली की तान।
नहीं किसी को रह पाता था
अपने मन का भी कुछ ज्ञान॥

कहते थे संगीत जिसे वह
जादू बन कर छा जाता।
करता जो रस-पान वही
बन कर रह जाता मदमाता॥

फिर उस ध्वनि पर झूम झूम कर
हिलते-हिलते गाते थे।
थक कर भी क्या थक पाते जब
चलते-चलते जाते थे?

सुन मुरली की ध्वनि, गोपी—
चल देती थीं तज पशु-दोहन।
मनमोहन की मुरली भी थी
विश्व-विमोहन मन-मोहन॥
कीर, मयूर सभी स्वर-लहरी
में डूबे-से दिखलाते।
मुरली की आकर्षक ध्वनि पर
सभी थिरकते इठलाते॥
लगता था व्रज-रज का कण-कण
बोल रहा है राधेश्याम।
जहां हुई अवतरित हरि-प्रिया
आदि-शक्ति राधा सुखधाम॥

卐

बाल-रूप में कभी जहां
लीलामय ने जग भरमाया।
ग्वाल-बाल संग लूट-लूट
नटवर ने दधि-माखन खाया॥

अवसर पाकर किसी गोप के
घर में घुस जाते छुप के।
देखा—ग्वालिन गई कहीं तो
खाते थे चुपके-चुपके ॥

एक दिवस गृह आती ग्वालिन
उठी झरोके से जब झांक।
निज गृह में माखन-चोरी का
दृश्य देख कर हुई अवाक् ॥

चढ़े मनसुखा के कंधे पर
छींके को थे रहे टटोल।
एक हाथ से चाट रहे थे
चोरी का माखन अनमोल ॥

दधि की हंडिया उलट गई
फिर लुढ़क गई सिर पर आई।
फूट गई पृथ्वी पर गिरकर
तब तो ग्वालिन रिसियाई॥

गई तुरत यशुमति के घर
बोली—'सुत की देखो करतूत।
दधि- माखन में लिपटा कैसा
बना हुआ है सुन्दर भूत॥

स्वयं खाय तो खाय, लुटाने
मैं भी तो नहिं रह पाता।
चढ़ छींके पर मटकी फोड़ी
फिर भी हँसता मदमाता ॥
जानें कब तक उस मटकी की
मुझको याद सतायेगी।
कहो नंदरानी! ऐसे—
कितने दिन तक निभ पायेगी?'

कहा यशोदा ने तब—'ग्वालिन!
क्यों मदमत्त हुई जाती?
मेरा लाल निरा भोला है
तू मदमाता बतलाती॥
अरी! बता कैसे मनमोहन
छींके तक चढ़ पायेगा?
वह छोटा सा बालक, उसका
हाथ कहाँ से जायेगा?
जान न पाई—'वह मदमाता
या है तू ही मदमाती?
दोप लगाती उस अबोध पर
तुमको लाज नहीं आती?'

तभी दूसरी गोपी आकर
बोली–'कह दो नंदरानी !
चलती जायेगी मोहन की
कब तक ऐसी मनमानी ?
छुपा हुआ था घर में कब से
मैं यह जान नहीं पाई ।
ढूंढ रहा था माखन-मिश्री
देखो उसकी चतुराई ॥
मिल पाया नवनीत न तो
छछिया भर छाछ नहीं छोड़ी ।
हाथ न कुछ लग पाया तो
झुंझल में मटकी ही फोड़ी ॥'
तब बोली वह प्रथम गोपिका-
'अब तो कुछ आया विश्वास ?
कह दो यह भी मिथ्या कहती
या करती होगी परिहास ॥'
हँस बोली नंदरानी–'तुम
दोनों में है कुछ गठ-बंधन ।
होगा कोई और धूर्त—
जिसको बतलाती हो मोहन ॥'

इसी ललित लीलास्थल में वह
बसा हुआ है रावल ग्राम।
जहाँ हुईं अवतरित हरि-प्रिया
आदि-शक्ति राधा सुख धाम॥

गोकुल ही तो बाल-कृष्ण का क्रीड़ास्थल है।
और इसी के निकट बसा सुन्दर रावल है॥

कूल पर, मथुरा के उस पार
किन्तु है निकट सुखद सुस्थान।
वहा के रज-कण भी हैं धन्य
जहां विचरे हैं श्री भगवान्॥

चतुर्थ सर्ग

कहूँ मैं फिर बाबल की बात
एक दिन आये गर्गाचार्य ।
हुए मन मे प्रसन्न वृषभानु
सोचते थे-'होगा अब कार्य ।।'

किया उनका नृप ने सम्मान
कहा 'मुझ पर करिये आभार ।
किया मम कन्या ने वय प्राप्त
इसी की चिन्ता मुझे अपार ।।

गये यह कह कर गर्गाचार्य
चले तब नृप भी अपने गेह ।
कही जब रानी से सब बात
हुई वह भी गद्‌गद्‌ सस्नेह ॥

卐

दीखता था काला-सा व्योम
चले थे गाय चराने नंद ।
कृष्ण बोले-'मैं भी तो आज
देखने को वन का आनन्द ॥

चलूंगा बाबा के ही साथ'
नंद बोले-'नभ है अति श्याम ?
छारही आज घटा घनघोर
बरस जाये न कहीं घनश्याम ॥'

श्याम बोले-'तो क्या है हानि ?
लगेगी अति सुखमय बरसात ।
बहेगी शीतल सुरभित वायु
प्रफुल्लित हो जावेगा गात ॥'

कहा तब बाबा ने—'घनश्याम !
अरे ! तू नहीं मानता बात ।
नहीं बचने को है सुस्थान
आगई वन में जो बरसात ॥'

'चलूंगा मैं तो बाबा ! आज'
—लगे यों कहने सुन्दरश्याम—
'आगई वन में जो बरसात
कहीं भी कर लेंगे विश्राम ॥'

आगये हठ पर जब घनश्याम
यशोदा बोलीं तब—'हे नाथ !
हठी ये, मानेगा क्या बात ?
इसे लेजाओ अपने साथ ॥'

चले तब नंद चराने गाय
साथ में अपने ले घनश्याम ।
लिये जो सुन्दर मुरली हाथ
लगे थे नयनों को अभिराम ॥

अंग सुकुमार, पीत परिधान
रत्न-मणि-मंडित पहने माल ।
मुकुट था बना मोर का पंख
लगा मनमोहक टीका भाल ॥

कहां पर हो इसका सम्बन्ध ?
बताओ यह मुझको ऋषिराज !
आप हैं अति गुणज्ञ विद्वान्
प्रभो ! यह करदो मेरा काज ॥'

कहा ऋषि ने उठ कर–'भूपाल !
संग मेरे चल यमुना-कूल ।
वहीं पर इसका करें विचार—
कौन-सा वर होगा अनुकूल ॥'

उठे वृषभानु चल दिये साथ
गये वे कालिन्दी के तीर ।
कहा ऋषि ने--'है एक रहस्य
भूप ! इसको मत देना चीर ॥

सुता साक्षात् प्रकृति का रूप
रही जो परम पुरुष के साथ ।
कृष्ण ही इसके जीवन-प्राण
वरेंगे इसे वही व्रजनाथ ॥

न कर इसमें कुछ भी संदेह
कृष्ण परिपूर्ण विष्णु-अवतार ।
मार कर दुष्टों को अब शीघ्र
हरेंगे दुखित धरा का भार ॥

जगत के वंदन करने योग्य
देवियों में भी श्रेष्ठ महान्।
सुयश की प्रतिमा है साक्षात्
शेष करते जिसका यश-गान॥

नृपति! जागा है तेरा भाग्य
लिया श्रीराधा ने अवतार।
न आवश्यक विवाह की रीति
किंतु, यह होगा लोकाचार॥'

भूप गद्‌गद्‌ टपके प्रेमाश्रु,
हुआ था मन अत्यंत प्रसन्न।
कहा फिर ऋषि से यों कर जोड़-
'नाथ! करिये विवाह सम्पन्न॥

आप से बढ़ कर कौन सुयोग्य
करेगा मुझ पर यह उपकार?
सौंप कर सुता, नाथ के हाथ
चुका दूंगा अपना ऋण-भार॥'

'नृपति! यह गोपनीय है बात'
—कहा ऋषि ने तज कर उत्साह-
'जहां है सुन्दर वन भाण्डीर
करेंगे ब्रह्मा वहां विवाह॥'

सुमन के धारे थे हथगुथ
गु'थीं कलिकाऐं करतीं हास ।
लगीं केसर की सुंदर बाल
बिखरतीं जिनसे सुखद सुवास ।।

स्वर्ण के कुण्डल अद्भुत चारु
जड़े जिनमें मणि-गण द्युतिमान ।
श्याम लावण्य युक्त छविधाम
अधर पर खेल रही मुस्कान ।।

जिन्हें कर घोर कठिन तप, यक्ष
न पाते अपि मुनि भी कर खोज ।
रूप की अद्भुत छटा ललाम
लजाते जिनसे कोटि मनोज ।।

सरस वाणी में जिनकी काव्य
गूंजता मुरली में संगीत ।
हास्य मे जग का सब ऐश्वर्य
दृष्टि में भरी हुई है नीति ।।

फेरते जिस पर अपना हाथ
अनुग्रह की करते जब दृष्टि ।
तभी खुल जाता उसका भाग्य
सभी सुख की होजाती वृष्टि ॥

卐

आगये वन में जब यदुनाथ
पीत आंधी बन कर तूफान ।
छागई भू पर करती नृत्य
हुए पशु-पक्षी सब ही म्लान ॥

होगईं दिशा धूल से बन्द
टूट कर गिरते वृक्ष विशाल ।
सोचने लगे तभी यों नद—
'आगया यह कैसा जंजाल ?'

देख कर आंधी का यह वेग
लगे कुछ व्याकुल-से घनश्याम।
कहा 'घर चलो शीघ्र ही तात !
वहीं चल कर होगा विश्राम !!'

सुभीरा, सुंदर गोल कपोल
रचा था मुख में नागरपान ।
रजिनी से रंजित कर-कंज
सदा देते आये वरदान ॥

मुद्रिका हेम-रत्न-मणि युक्त
करांगुलियों में रहीं अनेक ।
लग रहे नख भी रत्न-समूह
धनिक का मानो जगा विवेक ॥

रत्न-मंडित थे कंकण चारु
साथ में थे सुन्दर मणि-बंध ।
भुज' पर शोभित स्वर्ण अनंत
पीतमणि जटित बंधी कटि-बंध ॥

सुकोमल हेमवर्ण पद-पद्म
रंग से निकला था तल लाल ।
मत्त गज-सी चलती थीं मंद
चाल में लज्जित हुए मराल ॥

नंद ने कहा 'देवि ! तुम कौन ?
स्वर्ग से भूतल पर उद्भूत-
हुई, या स्वयं रमा साक्षात्
सभी संकट हरने को मूर्त ?'

देवि बोलीं—'तुम भूले तात!
न मेरा स्वर्ग लोक मे वास।
नाम राधा, वृषभानु-कुमारि
ग्राम रावल मे करू॑ निवास ।।
आगई थी सखियो के संग
देख कर ऋतु का नव-उत्साह।
धूल का किंतु वायु से आज
यहाँ गठबंधन हुआ अथाह ।।
कड़कती विद्युत का उल्लास
और मेघो का घोर निनाद।
छिड़ा डाले वट और विहग
लिये जाते घन का उन्माद ।।'
सोचते नंद—'राधिका-कृष्ण
देह दो किन्तु एक ही प्राण।
भक्ति से जिनका करके ध्यान
भक्त पाते संकट से त्राण ।।
अजर अज व्यापक और अनंत
सगुण, निर्गुण दोनो गुणधाम,
कृष्ण-राधा जब होते एक
पूर्ण बन जाते राधेश्याम ।।'

'अंधेरा हो तो है सब ओर
चलें कैसे ?' यों बोले नंद—
'गिरे पृथ्वी पर वृक्ष अनेक
ग्राम का मार्ग होगया बन्द ॥'

तभी अस्थिर-सी चमक विशेष
लिये विद्युत का तड़तड़ नाद।
हुआ, जिससे कांपे गिरि-खण्ड
लेचला वह समेट उन्माद ॥

रो पड़े तब यदुकुल के चन्द्र
हुए भय विह्वल और अधीर।
छोड़ते थे शीतल उच्छ्वास
देख कर नंद हुए गंभीर ॥

हुई चिंता—'कैसे घर जाय'
यही मन में भारी उद्वेग।
कड़कती विद्युत के ही साथ
बढ़ा था वर्षा का भी वेग ॥

चले आगे अति चिन्ता ग्रस्त
साथ में भय विह्वल घनश्याम।
तभी देखा—उस तम को चीर
खड़ी थी अद्भुत ज्योति ललाम ॥

रूप की प्रतिमा थी साक्षात्
गौर मुख अति उज्ज्वल द्युतिमान।
चकित चित खड़े रह गये नंद
देख कर वह लावण्य महान ॥

लिये थीं कर में सुंदर पद्म
छोड़ता था जो सुखद सुवास।
कंठ मे दिव्य-पुष्प का हार
अधर पर नृत्य कर रहा हास ॥

श्याम केशों मे गुथे गुलाब
लगें ज्यों नभ-तम में नक्षत्र।
लाजता मुख को देख मयंक
खिला जिसका प्रकाश सर्वत्र ॥

सुकोमल सुंदर और सुरंग
कान्तिमय वपु को ढकता चीर।
तरंगित मधु-झोंकों के साथ
उड़ाये देता उसे समीर ॥

भाल पर शोभित बिन्दी लाल
लाल मय कुण्डल थे अभिराम।
नासिका पर था मुक्ता श्वेत
अधर थे लाल वर्ण भ्रू श्याम ॥

कहा--'पकड़ो निज प्रिय का हाथ
एक परिपूर्ण युगल छविमान ।
नहीं जग की वसुधा की चाह
भक्ति का दो मुझको वरदान ॥'

भावना में डूबे जब नद
चरणों की ओर झुके जब हाथ ।
राधिका का पाकर संकेत
प्रिया के संग हुए यदुनाथ ॥

कहा श्रीराधा ने—'हे तात !
हुए तुमतो सब भांति सनाथ ।
नेह-बंधन में बँध जब स्वयं
तुम्हारे गेह आगये नाथ ॥

बनोगे भक्तों में तुम श्रेष्ठ
रहेगा सदा भक्ति का वास ।
वृद्धि होगी इसकी निशि-याम
करेंगे उर में कृष्ण निवास ॥

नहीं बांधेंगे यह भव-बंध
रहोगे माया से उन्मुक्त ।
परमपद पाओगे--तुम तात !
अंत में जग से हुए विमुक्त ॥'

'धन्य' कहते, कर जोड़े नंद
उठे, इकटक छवि रहे निहार।
'हुआ मैं तो बड़भागी आज
देख कर यह स्वरूप साकार ॥'

होगये मेघ स्वच्छ, रुक गया
व्योम का वातावरण अशान्त।
प्रेरणा से प्रभु की, पर, नंद
होगये थे श्रम से अति क्लान्त ॥

कहा—'श्रीराधा ! मैं भयभीत
हुआ, थक गया, करूं विश्राम।
कृष्ण को लेकर अपने साथ
तुम्हीं पहुंचाना गोकुल ग्राम ॥'

लिया तब समझ परस्पर भाव
अधर पर खिली मधुर मुसकान।
चकित चित देख रहे थे नंद
होगये दोनों अंतर्धान ॥

卐

प्रफुल्लित सुन्दर वन भाण्डीर
छागया एक नया उल्लास ।
विटप पर किसलय करतीं नृत्य
लुटाते अपना सुमन सुवास ॥

हँस रही लघु कलिकाएँ आज
डोलते थे मधुकर सविलास ।
ईर्षा करते प्राणी अन्य
छोड़ते थे लम्बा उच्छ्वास ॥

मनोहर थी कोकिल की कूक
और मैना का सुन्दर गान ।
नृत्य करते उन्मत्त मयूर
घूमते थे जो चक्र समान ॥

सजाये था पावन गिरिराज
पुष्प-पल्लव से अपना वेश ।
शैल-मालाएँ कर शृंगार
मूक-सा देती थीं सन्देश ॥

मुकुट बन गई शिखर उत्तुंग
लगे थे हसते-से पाषाण ।
खण्ड उत्सुक होने को एक
तरंगित थे सब के ही प्राण ॥

भरा जब जीवन में उत्साह
धूलि भी वन कर चली अबीर।
छेड़ कर उर-तंत्री के तार
चली जाती थी मद समीर॥

किये कल-कल का मधुर निनाद
प्रवाहित थे वे गिरि के स्रोत।
वेग में पड़े पुष्प के गुच्छ
बढ़े जाते ज्यों रण के पोत॥

प्रकृति भी लेकर नव उत्साह
चली हो देने को उपहार।
हुई उच्छृंखल चंचल आज
मधुरिमा शैशव को कर पार॥

छोड़ता था वह सघन कदम्ब
सुखद सौरभ की मत्त तरंग।
लिये मन में कुछ नई उमंग
कूजते जिस पर विविध विहग॥

बैठ जिसकी शाखा पर श्याम
राधिका संग लिये छविमान।
अधर पर लगी थिरकती वेणु
छेड़ती जो मनमोहक तान॥

चले तब आये वहाँ विरंच
जोड़ कर, झुका चरण में माथ।
कहा—'जग के ईश्वर हैं आप
मुझे भी करिये आज सनाथ ॥'

कृष्ण बोले—'मैं परम प्रसन्न
हुआ हूँ, मांगो कुछ वरदान।'
कहा ब्रह्मा ने—'मुझको नाथ !
कीजिये अपनी भक्ति प्रदान ॥'

'यही होगा' बोले यों कृष्ण—
'बहेगा उर में भक्ति-प्रवाह।'
कहा विधि ने-'यह विनती और
कीजिये राधा-संग विवाह ॥

आप दोनों हैं यद्यपि एक
मानना है पर लोकाचार।
सदा से चलते आये आप
लोक की पद्धति के अनुसार ॥

प्रभो ! यह सदा आपके साथ
लगी छाया के रही समान।
बसी भक्तों के उर में नाथ
यही जोड़ी रहती छविमान ॥

गोलोक-स्वामी यदि आप हैं तो,
यह आदिमाया राधा, न अन्या।
यदि आप नारायण पूर्ण ईश्वर
साक्षात् लक्ष्मी, वृषभानु-कन्या॥
जब आप रघु-कुल के राम थे तब
हे नाथ! यह थीं गुणखान सीता।
हैं आप जग के उत्पत्ति-कर्त्ता
यह मुक्तिदाता सरिता पुनीता॥'

कृष्ण बोले—'करिये वह कार्य
न बिगड़े जिससे लोकाचार।'
हुए सुन कर विरंच मन-मग्न
हाथ में लेकर गुरुतर भार॥

रचा अति सुन्दर एक वितान
लगाये थे मणि-मंडित खंभ।
'विश्व का वहाँ पूर्ण ऐश्वर्य
लोकपालों का हरता दंभ॥

सभी सामिग्री थी एकत्र
न उसमें कुछ भी हुआ विलंब।
चले मंडप में तब अखिलेश
प्रिया को दिये मधुर अवलंब॥

सजा सिंहासन मंडप मध्य
उसी पर बैठे राधा-नाथ।
हुआ था नभ में तब जय घोष
प्रिया का पाणि गहा निज हाथ॥

दिशाओं में छाया उल्लास
वाद्य-युत दिव्य सरस संगीत।
वेद-मंत्रों की ध्वनि के साथ
प्रकट की विधि ने अग्नि पुनीत॥

कराई फिर प्रदक्षिणा सात
सात ही मंत्र किये निर्माण।
परस्पर युगल होगये एक
देह दो किन्तु एक ही प्राण॥

डाल दी राधा ने जय-माल
कृष्ण ने भी डाला था हार।
कहा—'यह हार तुम्हारी जीत
हार देकर भी मेरी हार॥'

कहा तब राधा ने मुसक्याय—
'हार लेकर भी कैसी जीत?
याद वह कैसी श्रेष्ठ महान्
भूल जाती जो सदा अतीत?'

हुआ सब धर्म-रीति अनुसार
पूर्ण वैवाहिक कार्य-विधाव ।
पिता के तुल्य समर्पण युक्त
किया ब्रह्मा ने कन्या-दान ॥

सुरों ने करके दुंदुभि नाद –
गगन से की पुष्पों की वृष्टि ।
अप्सराओं का मोहक नृत्य
किये था दिव्य-गान की सृष्टि ॥

卐

स्वच्छ कालिंदी का था तीर
नीर का था उन्मुक्त प्रवाह ।
कहीं मानव की कटि उन्मान
कहीं पर वह होगया अथाह ॥

प्रवाहित, लगते, सुंदर पुष्प
नील नभ में जैसे नक्षत्र ।
नीर को छूकर मंद समीर
हुई शीतल बहती सर्वत्र ॥

उठे जाने को जब भगवान
राधिका ने गहि पटका, बेंत।
कहा—'जाओगे कैसे भाग ?
डाऊ मुख-मयंक पर रेत ॥'

राधिका ने फेंकी जो धूल
चली वह, धनपति पर ज्यों रंक।
न नभ में उठते दुर्बल मेघ
छुपाते ज्योतिर्मान मयंक ॥

नहीं छुप पाया वह मुख-चंद्र
लगी रज में भी ज्योति महान।
आवरण में दिनकर को कभी
छुपा पाता है क्या परिधान ?

धूल लग कर भी शोभामान
नहीं तुलना कर सके मनोज।
झपट झट तभी कृष्ण ने गहा
लगा राधा के शीश सरोज॥

कहा—'तब तक गामें यह पद्म
रखोगी यहीं मेरे हाथ।'
कहा राधा ने—'यह अन्याय
एक अबला पर करते नाथ ?'

कहा—'तब तू मां मैं यह पद्म रक्खूंगी जहां मेरे हाथ'

(पृष्ठ ६८

तैरते कछुओं का उल्लास
मछलियों का जल में नृत्य।
धार में पड़ी भँवर का व्यूह
बना जाता प्रवाह का तथ्य ॥

शुष्क रज कण का धवल श्वेत
रजत-कण का जिसमें आभास।
पड़े लघु शरत शुक्ति सर्वत्र
प्रकृति का करते-से उपहास ॥

तीर पर ऊंचे कहीं कछार
कहीं कृषकों के खादर-खेत।
कहीं पर खड़े सघन वट वृक्ष
कहीं वृन्दा मंजरी समेत ॥

वहीं पर आये सुन्दरश्याम
हाथ में लिये प्रिया का हाथ।
बैठ वट के नीचे सोल्लास
बजाते बंशी राधानाथ ॥

तरंगित वातावरण महान
गये पक्षी भी निज को भूल।
सभी जड़ चेतन में जय-नाद
वृक्ष भी बरसाते थे फूल ॥

दिशाओं मे छाया सगीत
निकट जा बैठे जो थे दूर।
मधुर मादकता में उन्मत्त
झूमते थे वे कीर, मयूर॥

रुकी मुरली, बोले भगवान—
'सुनाओ, राधे! तुम संगीत।'
कहा राधा ने तब—'घनश्याम!
मुझे तो केवल याद अतीत॥'

कृष्ण बोले—'कैसा अन्याय?
मुझी पर है इसका क्यों भार?
बजाऊं मैं भी क्यों यह वेणु
बनूं मैं ही क्यों अधिक उदार?'

कहा राधा ने—'सुन्दरश्याम!
बजानी ही होगी यह वेणु
फूंकती है यह सब में प्राण
गूंजती इससे ब्रज की रेणु॥'

'किन्तु कुछ लाभ न' बोले कृष्ण—
'तुम्हें तो केवल याद अतीत।
गया यह वर्तमान भी डूब
उसी में मुरली का सगीत॥'

कृष्ण बोले—'राधा ! यह बात
नहीं अबलाओं के अनुकूल ।
पुरुष से बेंत, वेणु, पट छीन
झोंकतीं नयनों में भी धूल ॥

नहीं वह अबला, सबला किन्तु
चोर से भी बढ़ कर है चोर ।
अनेकों ही आहत कर दिये
मार कर नयनों के ही तीर ॥

यही भय है-चल जाय न तीर
हृदय पर मेरे करे प्रहार ।
तुम्हारा देता हूँ यह पद्म
न उद्यत हूँ करने को रार ॥

मुझे दो, या मत दो वे वस्तु
करो जो इच्छा के अनुकूल ।
नहीं हठ करना मुझ को आज
सदा हठ रहा रार का मूल ॥'

पा गईं पद्म, सभी दीं वस्तु
परस्पर करते जाते व्यंग ।
कहा राधा ने—'हुआ विलम्ब
चलो अब गोकुल मेरे संग ॥'

कृष्ण बोले—'मेरा मुख म्लान
हुआ यह धूल-धूसरित रूप।
कहेंगी माता भी तो देख—
बना है कैसा आज अनूप ?'
इसलिये यमुना के जल मध्य
लगायेंगे हम डुबकी एक।
करेंगे फिर अपना शृंगार
तभी हो शोभा का अतिरेक ॥'
गये कालिंदी के जल मध्य
पकड़ कर श्रीराधा का हाथ।
विविध-विधि करते नीर-विहार
तीर पर आये राधा-नाथ ॥
कृष्ण ने किया स्वयं ही आज
प्रियतमा राधा का शृंगार।
आँज कर काजल नयनों मध्य
कंठ में किया सुशोभित हार ॥
स्वकर से श्रीराधा ने शीघ्र
नाथ का कर शृंगार अनूप।
दिया काँधे पटका, कर बेंत
बनाया सुन्दर अद्भुत रूप ॥

'बजाओ अब इसको घनश्याम'
कहा यों, देकर मुरली हाथ।
गही मुरली, छेड़ी सुख-तान
चले राधा के सँग यदुनाथ॥

卐

अभी संध्या में रहा विलम्ब
भास्कर भी थे ज्योतिर्मान।
किन्तु, ढलती जाती जो धूप
कर रही थी तम का आह्वान॥

उस समय लगता गोकुल ग्राम
सुखद, सुन्दर, गो-धन, श्री युक्त।
ध्वजा जो लगी भवन पर पीत
वायु में लहराती उन्मुक्त॥

उड़ाती धूल, रम्हातीं उच्च
आ रहीं वन से चर कर गाय।
श्वेत, कपिला, कुछ लाल, सुश्याम
रहीं अतिवर्णा रहीं सुहाय॥

सभी घर लगते सुखद सुरंग
लिपे थे गोबर से जो स्वच्छ।
द्वार पर था गिरकों के मध्य
बधी थीं गायें सहित सुवच्छ ॥

आगये नद भवन में श्याम
राधिका पकड़े उनका हाथ।
देख कर बोली उनसे मात—
'कहां से चले आरहे साथ ?'

कहा राधा ने—'वन में आज
आगया भीषण झंझावात।
कड़कती विद्युत वर्षा घोर
असह्य था सन को वह आघात॥

गई थी मैं भी सखियों-सग
अकेली रही बिछुड़, कर खोज।
रुक गया जब वर्षा का वेग
मिले तब आया, श्याम-सरोज॥

देख कर पूछी मेरी बात—
'आगई कैसे तू इस ओर ?'
कहा मैंने—'सखियों से आज
गई बिछुड़ा यह आंधी घोर॥

सोचती थी—'कैसे मैं हाय !
पहुंच पाऊंगी अपने गेह ?'
मिले वे तभी हुई निश्चिंत
दिया बाबा ने धैर्य सनेह ॥

अधिक व्याकुल थे बाबा नंद
देख कर वन का आज कुरंग।
उन्होंने कहा यही उस काल—
'चले जाना तुम दोनो संग ॥'

चले आये हम दोनों साथ
सम्हालो अपने यह घनश्याम।
हुआ है मुझको अधिक विलम्ब
इसलिये जाती हूं निज ग्राम ॥'

यशोदा बोलीं—'हे सुकुमारि !
धन्य ! वृषभानु-सुता गुणखान।
रूप की आभा उज्ज्वल भव्य
धन्य हो राधा ! तुम छविमान ॥

उठी है अकस्मात ही आज
हृदय तंत्री में एक तरंग।
देखती रहूं सदा ही साथ
तुम्हारा श्यामल-गौर सुअंग ॥

सभी घर लगते सुखद सुरंग
लिपे थे गोबर से जो स्वच्छ।
द्वार पर था खिरकों के मध्य
बंधी थीं गायें सहित सुवच्छ॥

आगये नंद-भवन में श्याम
राधिका पकड़े उनका हाथ।
देख कर बोली उनसे मात—
'कहां से चले आरहे साथ?'

कहा राधा ने—'वन में आज
आगया भीषण झंझावात।
कड़कती विद्युत वर्षा घोर
असह्य था सब को वह आघात॥

गई थी मैं भी सखियों-संग
अकेली रही बिछुड़, कर खोज।
रुक गया जब वर्षा का वेग
मिले तब धाया, श्याम-सरोज॥

देख कर पूछी मेरी बात—
'आगई कैसे तू इस ओर?'
कहा मैंने—'सखियों से आज
गई बिछुड़ा यह आंधी घोर॥

सोचती थी—'कैसे मैं हाय !
पहुंच पाऊंगी अपने गेह ?'
मिले वे तभी हुई निश्चित
दिया बाबा ने धैर्य सनेह ॥

अधिक व्याकुल थे बाबा नन्द
देख कर वन का आज कुरंग।
उन्होंने कहा यही उस काल—
'चले जाना तुम दोनों संग ॥'

चले आये हम दोनों साथ
सम्हालो अपने यह घनश्याम।
हुआ है मुझको अधिक विलम्ब
इसलिये जाती हूं निज ग्राम ॥'

यशोदा बोलीं—'हे सुकुमारि !
धन्य ! वृषभानु-सुता गुणखान।
रूप की आभा उज्ज्वल भव्य
धन्य हो राधा ! तुम छविमान ॥

उठी है अकस्मात ही आज
हृदय तन्त्री में एक तरंग।
देखती रहूं सदा ही साथ
तुम्हारा श्यामल-गौर सुअंग ॥

हो जायेगा जब स्वप्न सत्य
खिल जायेगी सुख-आशा-कली।
मैं समझूंगी तब कृत्य-कृत्य
जीवन अपना वृषभानु-लली!!

सुन प्रसन्न मन में हुई, मुसकाये घनश्याम।
चलीं लाज से लाल-सी, राधा अपने ग्राम॥

जब राधा अपने ग्राम चलीं
उनके मन की सब आशा फलीं।
तब लगनी वह वृषभानु-लली,
ज्यों खिली पुष्प की कली-कली॥

पंचम सर्ग

ओ चपल लेखनी ! अभी बहुत कुछ कहना ।
संकेत मात्र पाकर ही बढ़ती रहना ॥
ब्रजराज कृष्ण के चरणों में रख माथा ।
वृषभानुपुरी की कहनी है अब गाथा ॥
जब से बिछुड़ी प्रभु से वृषभानु कुमारी ।
वे खिन्न मना सी रहती अधिक दुखारी ॥
होगये विरह के घाव न वह पट पाते ।
रोते ही रोते दिवस-रैन कट जाते ॥

जब दुखित हृदय में धैर्य नहीं पाती थी।
उपवन में लख एकान्त चली जाती थी॥
कहती मैना के निकट पहुंच मतवाली।
'मेरे उपवन का हरिण कहां है आली?
जो भर छलांग मुझसे भी दूर गया है।
जो आह! वेदना देकर क्रूर गया है॥
जो ऊपर से घावों को पूर गया है।
पर, इस अंतर को तो कर चूर गया है॥
जो कभी पिलाता था मुझको मधु-प्याली।
मेरे उपवन का हरिण कहा है आली?
है श्याम किन्तु जिसके बिन लगे अंधेरा।
जिसने टेढ़ी चितवन से मुझको हेरा॥
जो बातों में मन छीन लेगया मेरा।
जो लेकर मुरली, पथ देगया मेरा॥
जिसकी शुभ मूरति मैंने देखी-भाली।
मेरे उपवन का हरिण कहां है आली?
यह विरह-वेदना हाय! रही हूँ सहती।
मैं इस दुख सागर में हीं डूबी रहती॥
री! पूछ रही हूँ कब से उर में दहती?
पर तू बैठी चुपचाप नहीं कुछ कहती॥

कर सके काम कुछ इसीलिये तू पाली ।
मेरे उपवन का हरिण कहां है आली ?

जो कभी किसी का मोह नहीं कर लाता ।
जो मानव को ममता में डाल भुलाता ॥
जो संत-जनों को भी तो है भरमाता ।
जिसकी माया का भेद न कोई पाता ॥
जिसने शिव पर भी कभी मोहिनी डाली ।
मेरे उपवन का हरिण कहां है आली ?

जिसने पग रखते ही पाषाण उड़ाये ।
टूटा शिव-धन्वा जिसका इंगित पाये ॥
जिसके बल पर, जल पर पत्थर तैराये ।
जिसने मुख में ही सभी लोक दिखलाये ॥
जिसकी मोहक छवि रहती सदा निराली ।
मेरे उपवन का हरिण कहां है आली ?

जिसने माखन की हांडी शीघ्र उघारी ।
जब नहीं मिला तो छाछ उड़ेली सारी ॥
जिसके बल का यश गान करें त्रिपुरारी ।
पीते ही जिसने दूध पूतना मारी ॥
जो पटका रखता पीत कमलिया वाली ।
मेरे उपवन का हरिण कहां है आली ?

जो नित्य प्रात उठ गाय चराने जाता ।
जो वट के नीचे वंशी मधुर बजाता ॥
निर्जीव प्राणियों को जो प्राण दिलाता ।
इस जग को उंगली पर जो सदा नचाता ॥
जो बालक होकर भी है अति बलशाली ।
मेरे उपवन का हरिण कहां है आली ?

जिसने अगणित असुरों का वध कर डाला ।
यमलार्जुन को भी भव-बंधन से टाला ॥
जिसको कहते गोपाल तथा नंद लाला ।
जिसकी शिशु-लीला देख मुदित ब्रजबाला ॥
नर्तन पर जिसके हँसतीं दे-दे ताली ।
मेरे उपवन का हरिण कहां है आली ?

होगया कंस-भय-त्रस्त पार का अंचल ।
हो उठे नंद उससे अति पीड़ित व्याकुल ॥
तब नंदग्राम को बसा दिया तज गोकुल ।
बस तभी तात ने भी बिसराया रावल ॥
यों नींव तुरत वृषभानुपुरी की डाली ।
मेरे उपवन का हरिण कहां है आली ?

वह नहीं तभी से मुझको है मिल पाया ।
मैं नहीं जानती क्यों मुझको बिसराया ?

मैं खीझ गई पर मन में वही समाया।
इन नयनों में उन्माद प्रेम का छाया॥
अंतर में मैंने हाय! वेदना पाली।
मेरे उपवन का हरिण कहाँ है आली?
आगईं विशाखा ललिता तभी यहाँ पर।
ले व्यथित हृदय श्रीराधा खड़ीं जहाँ पर॥
उनको यों व्याकुल-देख विशाखा बोली—
'क्यों करतीं इतना सोच सखी! अति भोली?
जिनके चिंतन में व्यस्त, नित्य वे आते।
बस इसी मार्ग से गाय चराने जाते॥
पर बिना धैर्य के कभी न कार्य चलेगा।
निश्चय मानो वह प्रियतम अवश्य मिलेगा॥'
यों बोलीं राधा—'नहीं मानता है मन।
अब कैसे हो संतोष बिना जीवन-धन?
उर-तंत्री की अब टूट रही है वीणा।
सखि! चित्र-कला में तू है अधिक प्रवीणा॥
अब चित्र बना, कर मुझे दिखा नटवर का।
तो होजाये कुछ न्यून भार अंतर का॥'
तब 'अच्छा' कह कर ललिता चित्र बनाती।
वह चली तूलिका पट पर रंग सजाती॥

मनमोहन का वह सुन्दर रूप दिखाया।
जिस पर होता अनुरक्त जगत भरमाया॥
फिर तुली तूलिका वही खींचती रेखा।
भांडीर विपिन का दृश्य सामने देखा॥
फिर कालिंदी का कूल घना मनमाता।
जिसका जल था अति स्वच्छ बहा-सा जाता॥
प्रभु के संग थी मनभावनि सुन्दरि राधा।
करते थे दोनो नृत्य, न थी कुछ बाधा॥
थीं चित्र देखतीं राधा चित्र-लिखित-सी।
उच्छ्वास छोड़तीं शीतल, हो गद्गद्-सी॥
कर-पर अतीत की याद लगा तन दहने।
'मुझको तो याद अतीत' कहा था मैंने॥
बोलीं—'यह कैसा मोहक रूप बनाया?
काँधे पर पटका पीत वही मन-भाया॥
यह वही बेंत है कर मे जो दर्शाया।
यह वही बांसुरी जिसने जग भरमाया॥
वह कितनी अद्भुत है अधरों पर लाली?
मेरे उपवन का हरिण कहां है आली?
उत्सुक सुनने को कान, नाथ की वानी।
इन नयनों ने दर्शन करने की ठानी॥

अब धैर्य नहीं रख पाता मन अज्ञानी ।
मैं तड़प रही ज्यों मीन, हाय ! बिन पानी ॥
मैं भटक रही ज्यों कोयल डाली-डाली ।
मेरे उपवन का हरिण कहां है आली ?'

मन कहा विसाखा ने—'मन-धीरज धारो ।
सखि ! नाथ मिलेंगे, चिंता सभी बिसारो ॥
क्या कभी विकलता से कुछ कार्य चला है ?
क्या कभी रुदन से विधि का लेख टला है ?
इसलिये सहो साहस से, जो होता है ।
धीरज खोता वह वस्तु सभी खोता है ॥'
पर, प्रेम-विह्वला राधा घोर विकल-सी ।
बस 'श्याम-श्याम' ही रटती रहीं अटल सी ॥
इतने में देखे मोहन वेणु बजाते
वे ग्वाल-वाल सग गाय चरा कर आते ॥
सकेत झरोके को कर ललिता बोली—
'देखो ! प्रिय जाते करते हुए ठठोली ॥'
झांका राधा ने सखि का इंगित पाते ।
देखे मनमोहन तभी वीथि से जाते ॥
ले संग गाय वे वशी अधर बजाते ।
थे सखा साथ उनसे जाते इठलाते ॥

यह देख राधिका बोलीं—'वे आते हैं।
पर आह! मुझे क्यों नहीं निभा पाते हैं?
क्या प्रेमी-जन ऐसे ही बिसराते हैं?
वे जाते हैं, पर मुझे न ले जाते हैं॥

वे गये, अरी! वे गये वेणु ले काली।
मेरे उपवन का हरिण कहा है आली?

जिस पर निर्भर है मेरा जीना-मरना।
वह छोड़ गया तो अब जीकर क्या करना?
है कठिन आह! अब मुझे विरह-नद तरना।
जो लगी व्यथा, नहि उससे सहज उबरना॥

मेरी रग रग में, छाई मूर्ति निराली।
मेरे उपवन का हरिण कहा है आली?

जो लगी हृदय मे क्या वह सहज बुझेगी?
जो बुझी दीप की लौ क्या पुनः जलेगी?
जो रुकी वायु क्या, वह स्वच्छन्द चलेगी?
क्या शुष्क प्रेम की सरिता कभी बहेगी?

किसने अंतर मे निराशाग्नि है वाली?
मेरे उपवन का हरिण कहा है आली?

देखो, सखि! देखो चित्रित मूर्ति हंसी है।
आश्वस्त बनाती-सी गल-माल खसी है॥

जब तक मेरे मन में वह मूर्ति बसी है।
तब तक शंका कैसी ?, आशा विकसी है—
दर्शन देगा जग के उपवन का माली ?
मेरे उपवन का हरिण कहां है आली ?'

卐

उसको भी बीते दिवस, न आशा फूली।
तब विरह-व्यथा में राधा सब कुछ भूली॥
उच्छ्वास न थे ये अंतरतल का रोदन।
बहता था दृग से नीर किये अनुमोदन॥
तब आई चन्द्रानना सखी यों बोली—
'किस लिये सखी! यह ग्रंथि हृदय की खोली ?'
बोली राधा—'सखि! व्यर्थ हुआ यह जीवन।
होरहा हृदय रुदन विना जीवन-धन॥
होगई अग्नि प्रज्ज्वलित अहा! इस मन में।
अब प्राण नहीं रह पायेंगे इस तन में॥
जब नटवर ने ही अपनी दृष्टि हटा ली।
मेरे उपवन का हरिण कहां है आली ?'

बोली यों चन्द्रानना—'सखी ! क्या कहती ?
तुम व्यर्थ हृदय में लिये वेदना दहती ॥
यह बिना मार्ग की कहो ! समस्या कैसी ?
निष्काम प्रेम के बिना तपस्या कैसी ?
जब प्रेम किया है तो विश्वास बनाओ।
यह भ्रम, चिन्ता, उद्वेग सभी बिसराओ ॥
ऐसा विवरण कोई भी मुझे बताये ?
यदि सफल हुआ हो प्रेम, निराशा पाये ?,
बोली राधा—'यह ज्ञान नहीं है मुझको ।
सत् असत् कर्म का ध्यान नहीं है मुझको ॥
अब तो केवल यह मन रोता-गोता है।
मैं नहीं जानती—क्या पाता-खोता है ?
विश्वास कहां जब नहीं प्राण ही तन में ?
अब तो छाया केवल अतीत जीवन में ॥
पर, वह अतीत भी धुंधला होता जाता।
मिटती छाया, जीवन भी सोता जाता ॥

केवल अब तो रह गई निराशा काली।
मेरे उपवन का हरित कहां है आली ?'

पर दृढ़ता से वह सखी रही समझाती—
'साहस रहने से सब आशा पुर जाती ॥

जिसने साहस का संचित द्रव्य लुटाया।
वह सभी लुटा बैठा निज भौतिक माया॥
इसलिये धैर्य से कार्य नहीं लोगी तो।
अपने निश्चय में सफल नहीं होगी तो।'
तब आई ललिता सखी वहां, बोली यों—
तुम जैसे हो संतप्त, कृष्ण भी हैं त्यों।
सखि! उनको भी ऐसी ही व्यथा सताती।
कहते थे—'मुझको निद्रा भी नहि आती॥'
राधा बोली—'कब गई सखी! तू उन पर!
हैं तो प्रसन्न मेरे प्रियतम नटनागर?
वे कब आकर इस विरहिन की सुधि लेंगे?
दर्शन देकर कब मुझे सान्त्वना देंगे?'
ललिता बोली—'वे भी तो हैं परवशवत्।
कैसे आयें? हैं मात-पिता के अनुगत॥'
बोली राधा—'तू चंद्रसखी! सुखदाता!
सुन शास्त्र गर्ग से हुई धर्म की ज्ञाता॥
कह वह विधान—हो पूर्ण कामना मेरी।
मिल जांय कृष्ण, है शुद्ध भावना मेरी॥'
तब बोली चन्द्रानना—'सुनो सुकुमारी!
तुलसी रोपन, पूजन, सेवन सुखकारी॥

विश्राम सहित सखि ! करो कृत्य यह पावन।
हो जायेंगे सब पूर्ण कार्य मन-भावन॥
जिस गृह में जन तुलसी-रोपण करते हैं।
उस गृह में श्री भगवान् सदा बसते हैं॥'
सुन कर राधा आश्वस्त हुई निज मन में।
तुलसी मंदिर तब बना केतकी-वन में॥
उस हेम भित्ति पर रत्न जड़े थे सुन्दर।
भीतर से भी था अति आकर्षक मंदिर॥
उस पर भी सुन्दर ध्वजा रत्न-मणि-मंडित।
तुलसी-रोपण का कार्य कर रहे पंडित॥
विधि सहित हुआ जिसका उद्घाटन, पूजन।
बन गया जहां संगीत विहग का कूजन॥
दीपक, घट के आगे प्रज्वलित अखंडित।
सब कार्य हुआ था वहां शास्त्र-विधि-मंडित॥
तब हो विनीत कर जोड़ राधिका बोली।
वृन्दा के आगे ग्रंथि हृदय की खोली—
'हे जन-मन भावनि, पतितोद्धारिनि सुखदे !
हे कष्ट निवारिनि संकट-टारिनि वरदे॥
हे हरित पल्लवे हेम मंजरी युक्ते।
हे सरस सुगंधे कृष्ण-वल्लभे शुभदे॥

हे दुख-विनाशिनी! मेरा दुख विसराओ।
मेरे प्रियतम को मुझसे शीघ्र मिलाओ ॥
होरही विकल, पर हूँ विश्वास सजोये।
बैठी विह्वलता उर मे सभी डुबोये ॥'
यह कहते ही रोमाच हुआ था भारी।
कहती-सी वृन्दा लगी—'सुनों सुकुमारी।
मैं अति प्रसन्न हूँ शीघ्र टलेगी बाधा।
तुम पुण्यवान् हो, भाग्यवान् हो राधा।
उर रखो भक्ति, विश्वास, विसारो चिंता।
अब शीघ्र मिलेंगे तुमको जगत-नियंता ॥'
पाकर शुभ आशिर्वाद उल्लसित मन था।
विश्वास, भक्ति, श्रद्धा युत अब जीवन था ॥

卐

श्री कृष्ण चले अब प्रेम-परीक्षा लेने।
हरने को संकट, दर्शन अपने देने ॥
रच लिया मार्ग मे अपना वेश निराला।
लगती मनमोहिनि, सोहिनि सुन्दर वाला ॥

कानों में कुण्डल सिर पर मुकुट सजाये ।
मस्तक पर बिन्दी अद्भुत लाल लगाये ।।
लग रहा नासिका पर मुक्ता उज्वल था ।
ठुड्डी पर हीरा ज्योतिर्मान धवल था ।।
कौस्तुभ-मणि-महित रही कंठ में माला ।
मणि-खचित हेम-कंकण था कर में डाला ।।
सज रहे अंग परिधान सुकोमल सुखकर ।
कढ रहे पुष्प-से, रत्न जड़े थे जिन पर ।।
चलती थीं धीमी चाल मत्त-गजगामिनि ।
वृषभानुपुरी में गईं तुरत मनभामिनि ।।
देखा—राधा प्रियतम की याद सँजोये ।
अनवरत अश्रु-मुक्ता की लड़ी पिरोये ।।
बैठी थीं, इनको देख, उठीं अकचक-सी ।
उठ चली हृदय में परिचित एक कसक-सी ।।
बोलीं राधा—'स्वागत है सखी ! पधारो ।
इस कुटिया को करके पवित्र उपकारो ।।
कर अधिक अनुग्रह स्वयं भगवती आईं ।
मैं हूँ बड़भागिनि आज दर्श कर पाई ।।
क्या रमा स्वयं आई रख रूप निराला ?
या इन्द्र-लोक की हैं कोई सुर-बाला ?

कर कृपा मुझे अपना शुभ नाम बताओ
सखि ! मैं हूँ अनुचरि, मुझे शीघ्र अपनाओ ॥'
बोली युवती—'हूँ रमा न मैं सुर-कन्या ।
रहती गोकुल में प्रभु की भक्त अनन्या ॥
है गोपदेवि मम नाम सभी की परिचित ।
कुछ द्रव्य पास है पूर्वजनों का संचित ॥
है नंद-गेह के निकट निकेत हमारा ।
ललिता के मुख से सुन कर सुयश तुम्हारा ॥
उठ रही लालसा तव दर्शन की उत्कट ।
अब देख सुअवसर चली आरही झटपट ॥
जैसा सुनती थी रूप, वही पाया है ।
सखि ! दर्शन कर आनंद अधिक आया है ॥'
राधा बोलीं—'है धन्य भाग्य ! तुम आयीं ।
यह सूरत सखि ! मेरे मन को अति भायी ॥
जगती पर ऐसा रूप न मैंने देखा ।
ज्यों रचकर रची ब्रह्मा ने नख-शिख-रेखा ॥
यह सुन्दर कोमल गात्र सुनयन बरौनी ।
वे स्वयं मुग्ध होंगे गढ़ मूर्ति सलौनी ॥'
बोली युवती—'क्यों करतीं व्यर्थ बड़ाई ?
सखि ! स्वयं देखलो अपनी देह-लुनाई ॥

यदि पाले दुख में जो महान होते हैं।
क्या दुख पाते जो कलवान होते हैं?
क्या, लाल कभी चिथड़ों में भी दुख पाता?
जो पड़ा पंक में वह स्वयं खिल जाता॥
होगई सांझ, अब दूर नगर है मेरा।
जाती हूँ' कह कर राधा को फिर हेरा॥
अति दुखित हुई सुन विरह-आकुला राधा।
बोली आतुर-सी—'यह विचार क्यों साधा?
तुम अभी, कह रही आने को क्यों निर्मम?
अब बिना तुम्हारे लगे न मन सख्युत्तम!''
माया-युवती बोली देती आश्वासन—
'सखि! चिन्ता छोड़ो, धैर्य रखो अपने मन॥
अब तो होरहा विलम्ब मुझे, जाऊंगी।
विश्वास रखो सखि! भोर हुए आऊंगी॥'
यह कह कर युवती गई, रुकी नहिं रोके।
राधा शय्या पर पड़ी विकल-सी होके॥
कट सकी किन्तु सुख से वह रैन नहीं थी।
वे नयन उनींदे थे पर नींद नहीं थी॥
ज्यों-त्यों करके टल सकी रैन वह निर्मम।
तब, भोर हुए आई युवती सुन्दरतम॥

उठ पड़ीं राधिका स्वागत करतीं भारी ।
आसन देकर बोलीं - 'मैं हूँ आभारी ॥
मेरे हित तुमने सखि ! यह कष्ट उठाया ।
जब किया अनुग्रह, नेह दिया मन-भाया ॥
तो इतना भी बतलाना सखी निराली !
मेरे उपवन का हरिण कहां है आली ?

जो, सखी ! तुम्हारे निकट गेह के रहता ।
कहते हैं-वह भी विरह-व्यथा अब सहता ॥
जो सदा बाँसुरी बजा-बजा यों कहता—
'है हरी धर्म की मूल, पाप रह दहना' ॥
जो लगे दीन, पर है अति वैभवशाली ।
मेरे उपवन का हरिण कहा है आली ?

बोली युवती—'वह कौन भाग्यशाली है ?
जिसने राधा की ओर दृष्टि डाली है ?
पर हाय ! अभागा क्यों सतत बनाता ?
जो दग्ध-हृदय है उसको व्यर्थ जलाता ?'
राधा बोली—'सखि ! वह हैं कृष्ण कन्हैया ।
जो भव-सर से जीवन की नाव खिवैया ॥
जिसने इस उर में बीज प्रेम का बोया ।
जो मुझे जगा कर हाय ! स्वयं ही सोया ॥

। अब भूल गये हैं सखी ! मुझे वनमाली ।
। मेरे उपवन का हरिण कहां है आली ?'
बोली युवती—'सखि ! तुमने क्या कर डाला ?
वह 'लपट निपट लबार मूर्ख नंदलाला ।।
उससे कर प्रेम-प्रतीति सुबुद्धि गंवाई ।
दूबी उससे बाबा की सुयश बड़ाई ।।
वह चुरा-चुरा कर दधि-माखन खाता है ।
ब्रजवन में घूर्त लुटेरा कहलाता है ।।'
उद्विग्न हुई राधा सुन कर यह वाणी ।
बोली हतप्रभ-सी जोड युगल निज पाणी ।।
'हे सखी ! नहीं है उचित अधिक कुछ कहना ।
होगा मेरा दुर्भाग्य बुराई सहना ।।
लगता है—तुम पर नहीं कृपा है उनकी ।
वे हैं प्रभु, तुम माया में भूली जिनकी ।।
भरमाता प्राणी, तो न पार फिर पाता ।
जितना सुलझाता स्वयं उलझता जाता ।।
तुम नहीं जानतीं वे हैं जगत-नियंता ।
योगी-जन उनको कहते सर्व-रमंता ।।
उनके जप से संकट महान टरते हैं ।
वे ही जग की वसुधा प्रदान करते हैं ।।

जो युग-युग में इस भूतल पर आते हैं ।
धरणी का हर कर भार चले जाते हैं ॥
जो नहीं भक्त के कष्ट देख पाते हैं ।
जो सुन कर आर्त्त पुकार शीघ्र आते हैं ॥

जिनकी इच्छा से मुक्ति-भुक्ति सब मिलती ।
किसलय भी उनकी इच्छा बिना न हिलती ॥
करते हैं जिनका ध्यान संत-मुनि-त्यागी ।
पर, हुई विमुख मैं कैसी हूँ हतभागी ॥

दुर्भाग्य ! शारदा जिनकी करें बड़ाई ।
उनकी ही इन कानों ने सुनी बुराई ॥'
उच्छ्वास छोड़ती मन में व्याकुल होतीं ।
नयनों से बहने लगे अश्रु घन मोती ॥

यह दशा देख युवती प्रसन्न होती-सी ।
बोली—'राधे ! तुम लगो स्वयं खोती-सी ॥
उत्कृष्ट प्रेम तुममें ही मैंने पाया ।
मैं इसी प्रेम-बंधन में बंधकर आया ॥

हो सका न मुझसे इसका उल्लंघन है ।
प्रियतमे ! अहा ! यह कितना दृढ़ बंधन है ॥'

जब सुनी कर्ण-प्रिय वाणी
हिल गया तभी अंतर्तम ।
देखा-वह सखी नहीं थी—
थे खड़े सामने प्रियतम ॥

सुधि-बुधि भूलीं राधिका, गद्गद् और अधीर ।
अति विह्वल गंभीर लख, अंक गही यदुवीर ॥

थीं विह्वल और अधीर महा,
तब अङ्क उठा कर कृष्ण कन्हैया।
'क्यों छोड़ रहीं उच्छ्वास कहो'
यों बोल पड़े वे धीर-धरैया ॥

कब पास नहीं मैं प्राणप्रिये !
इतनी करतीं तुम, ढूंढ-ढुढैया ?'
उठ साथ चलीं वृषभानु लली !
सँग नाच रहे वह रास-रचैया ॥

षष्ठ सर्ग

थी उष्ण हुई जो वायु चली
वह आँधी बन कर इस जग में।
ले धूल उड़ी महि से उठ कर
जाती बिखेरती-सी मग में॥

अट गये गेह, भर गया धुन्ध
तब हुआ ग्रीष्म का अनुभव था।
फिर छाई हरियाली सुखमय
वह वर्षा ऋतु का वैभव था॥

सब अंतरिक्ष की लहरों से
अमृत की बिन्दु बरसती थीं।
चुपके-से वह भी चली गई,
कुछ शीतल शरद सरसती थी॥

चल रही वायु शीतल-सुरभित
होरहे जीव उन्मत्त सभी।
बज उठी बाँसुरी मोहन की
होगईं सखी मदमत्त तभी॥

कह रहीं परस्पर-'सखी! कहाँ
मोहन के दर्शन कर पायें?'
बोली उनमें से एक—'अभी
हम यमुना—कूल निकल जायें॥

मिल जायेंगे नटवरनागर
होंगी वृषभानु—कुमारी भी।
जब कृपा करेंगे हम पर वे
देखेंगे दशा हमारी भी॥'

इतने में ही श्रीराधा भी
आकर बोलीं—'घनश्याम कहाँ?
क्या देखे हैं सखियो! तुमने
बतलाओ वे सुखधाम कहाँ?

वंशी बजती यमुना—तीर
सखी ! मन मेरा हुआ अधीर ।
रोम-रोम को जो उकसाती,
इस जीवन को मत्त बनाती,
विरह-व्यथा को हाय जगाती,
गही हृदय की पीर ।
वंशी बजती यमुना—तीर
सखी ! मन मेरा हुआ अधीर ॥
भारी मन को कभी तोलती,
लगी ग्रंथि को कभी खोलती,
अतस्तल को जो टटोलती,
बहती हाय ! समीर ।
वंशी बजती यमुना—तीर
सखी ! मन मेरा हुआ अधीर ॥
बैठी हूँ मैं याद सजाये,
आशा का ही दीप जलाये,
पद—सरोज जिससे धुलपायें—
सचित दृग का नीर ।
वंशी बजती यमुना—तीर
सखी ! मन मेरा हुआ अधीर ॥

भित्ति बुरी लगती अब घर की,
देख सकूं मैं छवि गिरिधर की,
जान सकेगा इस अंतर की—

कौन पराई पीर ?
वंशी बजती यमुना—तीर
सखी ! मन मेरा हुआ अधीर ।।'

बोलीं सखियां—'है ज्ञात नहीं
हमको न मिले नटवर नागर ।
अब साथ तुम्हारे चल देखें
हम भी यमुना-तट पर जाकर ।।

पहुंचीं यमुना के कूल सभी
पर मिले न वह सुखधाम वहां ।
सब लगीं परस्पर यों कहने—
'घनश्याम कहां, घनश्याम कहां ?'

सुन पाई फिर कुछ दूर कहीं
मोहन की वंशी बजती थी ।
ध्वनि पर हो चलदीं ब्रजबाला
वे आशा, धैर्य न तजती थीं ।।

जब पहुच गईं वन गह्वर में
ब्रजराज बजाते थे मुरली ।
राधा को लख स्वागत करते
बोले—'आओ ! वृषभानु लली ।'

अब रास हुआ आरंभ वहा
था दृश्य मनोहर सुखकारी ।
रासेन्द्र कृष्ण के दर्शन कर
सखिया हर्षित उर में भारी ॥

पग चलते-चलते रुकते थे
उड़ते थे ब्रज-रज-रेणु तभी ।
फिर चलते थे उस ही गत पर
ब्रजराज बजाते वेणु जभी ॥

वह वेणु-नाद था उच्च सरस
पहुचे उसके स्वर ग्रामों में ।
वे भी गोपी सुन कर चलदीं
जो व्यस्त हुईं थीं कामो में ॥

दुहती गायो को छोड चलीं
पकवान्न बनाती उठदीं कुछ ।
घर लीप रहीं वे विचलित हो
शृंगार बिना ही चलदीं कुछ ॥

कह रहीं परस्पर—'देख सखी
मोहन की मुरली अद्भुत है ।
बैठीं विमान में सुर-बाला
जो उसके स्वर पर मोहित हैं ।।

उनके प्रियतम ले अंक उन्हें
बैठे, पर उनको धैर्य कहां ?
मुरली की ध्वनि में मत्त हुई
वेणी के गिरते पुष्प यहां ।।

है यह कदम्ब भी बड़भागी
जिस पर मनमोहन चढ़ते हैं ।
यह व्रज-रज भी है धन्य अहा !
जिस पर प्रभु के पग पड़ते हैं ।।'

आगईं वहां अगणित गोपी
कुछ पृथक हुईं, कुछ झुंडों मे ।
एकत्र हुईं, ज्यों वर्षा का
जल होजाता है कुंडों में ।।

उनको देखा प्रभु ने, बोले—
'क्यों आईं हो व्रज-बालाओ ?
है कुशल तुम्हारे ग्रामों में
पहले यह मुझको बतलाओ ?

फिर, मुझको यह आदेश करो—
तुम सबका क्या सत्कार करूँ ?
जो आज्ञा हो वह कार्य करूँ
वैसा ही मैं व्यवहार करूँ ?'

बोलीं गोपी—'क्या कहते हो ?
ब्रजराज ! तुम्हारी अनुचरि हम ।
प्रिय के दर्शन को आई हैं
इन चरणों की हैं किंकरि हम ॥'

प्रभु बोले—'दर्शन हुए तुम्हें
यह रात्रि भयानक अँधियारी ।
सर्वत्र विचरते रहते हैं
वन में भयावने निशिचारी ॥

फिर, खोज रहे होंगे तुमको
पति, पुत्र, पिता, माता, भ्राता ।
निशि में नारी निज गृह त्यागे
नहिं धर्म उचित यह बतलाता ॥

पति का दर्शन ही धर्म महा
नारी का तीर्थ न अन्य कहीं ।
सब भुक्ति-मुक्ति उससे मिलती
आराध्य वही, सब पुण्य वही ॥

बैठे होंगे वे, आशा में
उनको सतियो ! मत रुष्ट करो।
जाकर मांगो अब क्षमा-दान
निज पतियों को संतुष्ट करो ॥

तुम देख चुकीं सब शोभा, इस-
पल्लवित और कुसुमित वन को।
यह फैल रही शशि की आभा
जो परिचायक उज्ज्वल मन को ॥

यह जान रहा हूँ सब प्राणी
करते हैं मुझसे नेह घना।
पर, उसी नेह में क्या कोई
तजता है धर्म कर्म अपना ?

है नेह सदा से ही पावन
पर, नहीं वासना हो उसमें।
वह नेह सदा बनता कलङ्क
आसक्ति-कामना हो जिसमें ॥

इसलिये, शीघ्र सतियो ! जाओ
वश में करलो यह चंचल मन।
अब देख रहे होंगे बैठे
तकते—मे वे प्रत्यावर्त्तन ॥

कुलवंती का यह कार्य नहीं
सत्कर्मों को जो विसराये ।
पर-पुरुष नर्क का साधन है
उसमें अपना मन भरमाये ॥

उपपति, नारी के मस्तक पर
कालिमा पोतने वाला है ।
वह निश्चय ही सन्नारी की
यश कीर्ति मिटाने वाला है ॥

जप, ध्यान, धर्म, दर्शन में ही
मैं तो प्रसन्न होजाता हूँ ।
पर, निकट किसी पर-नारी के
रहने को नहिं सह पाता हूँ ॥

इस लिये तुम्हें ब्रज-बालाओ !
पतिव्रत को अपनाना होगा ।
रह पाओगी तुम यहा न अब
निज-निज गृह को जाना होगा ॥'

सुन कर कठोर वाणी प्रभु की
गोपिया अधिक सन्तप्त हुईं ।
बोलीं— 'तुम हो पतियों के पति
हम उनमें नाथ ! विरक्त हुईं ॥

गृह छोड़ चली आई प्रियतम !
सब ममता-मोह विसारा है ।
अब लोक-लाज भी त्याग चुकी
प्रभु का ही एक सहारा है ।।'

बोले प्रभु—'यह है भ्रम केवल
नियमों पर अवलम्बित जग है ।
जो नहीं मानते नियमों को
उनको अवरुद्ध सदा मग है ।।

पति ही ईश्वर है इस जग में
नारी का है शृंगार वही ।
वह ही जीवन का साथी है
भव-सागर का पतवार वही ।।

परलोक बनेगा नारी का
पति से ही नेह लगाने में ।
कल्याण निहित है उसका तो
पति को संतुष्ट बनाने में ।।

जाओ निज गृह को लौट अभी
यह परामर्श मेरा मानों ।
इस जीवन में पति को तज कर
वसुधा वैभव विषवत् जानों ।।'

संतप्त हुईं वे व्रजबाला
सुन कर मनमोहन की वानी।
नयनों से झर-झर झरता था
काजल-मिश्रित काला पानी॥
उच्छ्वास छोड़तीं थीं मुख से
कुछ विचलित-सी मदमाती-सी।
पद के अंगुष्ठ से रज पर
कुछ अद्भुत रेख बनातीं-सी॥
बोलीं—'मनमोहन! हमको ही
यह वाक्य धरोहर रखने थे?
दुर्भाग्य हमारा ही था क्या
जो यह खट्टे फल चखने थे?
हे प्राणनाथ! हे जीवनधन!
अब नहीं छोड़ कर जायेंगी।
इन चरणों को पकड़े-पकड़े
मिट जायेंगी, मर जायेंगी॥'
बोले यों लीलाधाम तभी—
'क्यों व्यर्थ मुक्ति का मग खोतीं?
क्या नहीं जानतीं सतियों की
महिमा कितनी महती होती?

था एक समय, ऋषि अत्रि नहीं
जब रहे उपस्थित कुटिया पर ।
पतिव्रत का मन्त्र परखने को
जा पहुंचे तब ब्रह्मा हरि हर ॥

ऋषि-पत्नी ने उनको देखा
विधिवत् स्वागत सत्कार किया ।
फिर बोलीं—'आये आप यहां
मुझ पर भारी उपकार किया ॥

हैं कौन आप, किस हेतु प्रभो !
आने का कष्ट उठाया है ?
की कृपा, कुटी को कर पवित्र
बड़भागिनि मुझे बनाया है ॥'

बोले हरि—'हम हैं विष्णु-भक्त
भोजन विधान से खाते हैं ।
आतिथ्य यहां पर पाने को
हम अधिक दूर से आते हैं ॥'

बोलीं अनुसूया—'धन्य प्रभो !
चिंतित क्यों किसी समस्या में ?
कहिये विधान है किस प्रकार
भोजन की करू' व्यवस्था मैं ?

बोले ब्रह्मा—'संकोच हमें
पर, आवश्यक कहना होगा।
हो वस्त्र-हीन, निज कर से ही
हमको भोजन देना होगा ॥'

बोली अनुसूया धैर्य सहित—
'हे भक्तराज! क्या कहते हो?
नहि मरी वासना-ममता क्या
लोलुपता में क्यों बहते हो?'

बोले शिव—'क्या आतिथ्य यही
सत्कार इसी को कहते हैं?
हरि भक्तों से सज्जनता का
व्यवहार इसी को कहते हैं?

फिर सोचा कुछ ऋषि-पत्नी ने
बोली—'विधान विधिवत् होगा।
जो बनी कामना भक्तों की
वह सभी यहां ईप्सित होगा ॥'

बैठे त्रिदेव, ऋषि-पत्नी ने
भोजन की सभी व्यवस्था कर।
पग धोकर उनको बैठाला
लेजाकर सादर पत्तल पर ॥

बोलीं—'मैं यदि सतवन्ती हूँ
पति का ही करती ध्यान सदा।
तो बनें आप शिशु छोटे-से
मिट जाय सभी बाधा-विपदा ॥

यह कहना था ऋषि-पत्नी का
क्षणभर का नहीं विलम्ब हुआ।
बालक थे तीनों—विधि हरि हर
रोदन उनका अवलंब हुआ ॥

यह शक्ति रही है पतिव्रत में
ब्रजबालाओ ! अब गृह जाओ।
निज पतियों को सतुष्ट करो
इस मिथ्या भ्रम को विसराओ ॥'

बोलीं ब्रजबाला मनमोहन !
घर-बार न हमको भाता है।
इस बंशी ने मन मोह लिया
अब कुछ भी नहीं सुहाता है ॥

स्वीकार प्रेम, या तिरस्कार
जो कुछ हमको मिल पायेगा।
दुख सह कर भी तुमको पाकर
सतोष हृदय में आयेगा ॥

अपयश होगा तो चिन्ता क्या ?
हम तुमको छोड़ न पायेंगी ।
ठोकर खाकर भी मनमोहन !
चरणों में शीश नवायेंगी ॥"

क्या कहते ? नटवर मौन हुए
अब महारास का साज सजा ।
राधा, सखियाँ, सब ब्रज-वनिता
सविलास सहास समाज सजा ॥

ब्रज-वनिता मस्त हुईं उसमें
अपनेपन का कुछ ज्ञान न था ।
कब चले गये राधा-नटवर
इसका उनको कुछ ध्यान न था ॥

होरहीं विरह-संतप्त सभी
चलदीं वृक्षों के पुञ्जों में ।
वे ढूंढ रहीं नटनागर को
वन-उपवन और निकुंजों में ॥

उन्मत्त हुईं थीं, भूल गईं
जड़-चेतन का भी भेद सभी ।
प्रभु का करतीं यश-गान चलीं
मन में लेकर सब खेद सभी ॥

पशु, विहग, शैल, वन-वृक्षों से
पल्लव-पुष्पों से पूछ रहीं—
'देखे तुमने नटवरनागर
सुख-सागर सुन्दरश्याम कहीं ?'

मिला न उत्तर पूछ-पूछ वे हारीं ।
श्याम-मिलन की आशा सभी बिसारी ॥
कहा परस्पर—'अब क्या पीछे हटना ?
लग रही वहां बस 'श्याम' 'श्याम' की रटना ॥

गूंजी दिशि अविराम,
श्याम, श्याम, घनश्याम ।

सप्तम सर्ग

सरस हुआ है सुरम्य कानन
विटप फलों से लदे हुए हैं।
हुए सुविकसित मिले परस्पर
कुसुम-कली भी गुँथे हुए हैं॥

सुडाल कोमल झुकी हुई हैं
विहँस रही हैं सुपल्लवित हो।
सुगुण विभूषित सुसभ्य नर ज्यों
झुके रहें तन उल्लसित हो॥

उमड़ पड़े हैं सुताल, मानों—
चले सुरसरि से मेल करने।
उछल-उछल कर विहंग घन में
लगे सभी आज खेल करने॥

पवित्र यमुना, सुकूल सुन्दर
प्रवाह में थीं तरंग आतीं।
सुनील जल से विहार करती
समीर शीतल चली कँपाती॥

रुचिर सिंहासन कछार समतल
सुरम्य व्रज-रज बनी बिछावन।
पड़े जहां पद-सरोज कोमल
हुई धरा वह प्रफुल्ल पावन॥

लगे जहां कृष्ण पुष्प चुनने
झुकीं सुशाखें सनेह पाकर।
समझ रहीं थीं हुई सुफल सब
उठीं सुमन को स्वयं गिरा कर॥

जहां किये थे सुपुष्प संचित
वहीं प्रिया भी विलस रहीं थीं।
विनोद-मग्ना सुकंठ कोमल
हंसा-हंसा कर विहंस रहीं थीं॥

कहा प्रभो ने—'प्रिये ! यहाँ पर
सुरम्यता ही भरी हुई है।
सरस रही है धरा मनोहर
सभी दिशायें हरी हुई हैं ॥

जहाँ प्रवाहित सुनील यमुना
चलो उसी के पवित्र तट पर।
कहीं चला जल सुशान्त होकर
अशान्त होकर कहीं झपट कर ॥

चढ़ें उछल कर हिलोर जल की
सुकूल से जो किलोल करतीं।
न जीत पातीं कछार से तो
चलें व्यथित-सी उसांस भरतीं॥'

कहा प्रिया ने—'सदा हृदय में
तरंग उठतीं किलोल करतीं॥'
कछार निर्मम विचूर्ण करता
तभी विकल हो उसांस भरतीं॥'

चले प्रभो ले मृदुल प्रिया-कर
कदाच निज पर हुआ समझ कर।
पहुच किनारे सुश्याम सरि के
हठात् बैठे- सुरम्य रज पर ॥

तभी प्रभो ने बिठा प्रिया को
कहा—'प्रिये ! यह प्रसन्न है मन।
उठा करों में भुजंग वेणी
सुमन सजा कर किया सुगुंथन ॥

मृदुल करों मध्य राधिका की
सुश्याम वेणी सघन दिखाती।
जिसे निरख कर अधिक सुहाती
भुजंगिनी भी स्वयं लजाती ॥

गुंथे सुमन वे रहे चमकते
लगे मनोहर सुरंग सुरभित।
सुतारिकाऐं यथा गगन में
विहँस रही थीं, हुई प्रकाशित ॥

उठे वहां से चले विपिन में
कहा प्रिया ने—'अधिक थकी हूं।
चला न जाता, चुभा शूल भी
इसीलिये मैं प्रभो ! रुकी हूं ॥

कहो न ! कैसे चलूं प्रभो मैं ?
स्वयं उठाये न उठ सकूंगी।
न चल सकूंगी बिना सहारे
तुम्हीं उठाओ तभी उठूंगी ॥

थकान मुझको हुई अधिक है
प्रभो ! दुखें पग-पग मेरे ।'
कहा उन्होंने विनोद में तब—
'चढ़ो प्रिये ! आज स्कंध मेरे ॥'

तभी झुके थे, उठीं प्रिया भी
अदृश्य माधव हुए, न देखे ।
कहां गये वे ? प्रिया दुखित थीं
हुई विकलता, विविध परेखे ॥

चलीं वहां से विरह-व्यथा ले
पुकार करतीं—'प्रभो कहां हो ?
बिसारते क्यों स्वयं व्यथित हूँ
मुझे बुलालो गये जहां हो ॥

थकान भी अब न देह में है
न शूल की अब व्यथा रही है ।
प्रभो ! लगी है नवीन बाधा
विरह-व्यथा ही सता रही है ॥

मुझे बताओ न ! श्यामसुन्दर !
बिसार कर क्यों चले गये हो ?
बता प्रभो ! आज दोष क्या है
न साथ जो नाथ ! लेगये हो ?

न धैर्य पाता हृदय अभागा
कहो-कहो क्यों न नाथ ! आते ?
न साथ कोई, विपिन भयानक
दुखित हुई, क्यों नहीं निभाते ?

अस्वस्थ जीवन, निराश है मन
प्रफुल्लता है न कल्पना ही।
प्रभो ! गई आज बुद्धि भी तो
रही न इच्छा, न योजना ही ॥

卐

उधर सखी थीं विलाप करतीं
मिले उन्हें जब न श्यामसुन्दर।
चलीं विटप, पुष्प, पल्लवों को
व्यथा सुनातीं निराश होकर ॥

अशोक से जा कहा उन्होंने—
'न शोक रहता निकट तुम्हारे।
सशोक हैं हम, हरो उसे तुम
कहो कहाँ हैं प्रभो हमारे ?

धधक रही है वियोग-ज्वाला
हृदय हमारा जला रही है।
दया न आई उन्हें तनिक-भी
व्यथा हमें अब सता रही है॥'

न बोल पाया अशोक तो फिर
कदम्ब के जा निकट कहा था—
'विलोक पाये उन्हें, गये जो
मृदुल प्रिया-कर, स्वकर गहा था?

चले इधर से युगल गये वे
न किन्तु पाये हमें कहीं पर।'
परंतु उत्तर मिला न उनको
चरण बने थे सुखद वहीं पर॥

विलोक जिनको कहा किसी ने—
'गये यहीं से अभी! निकल कर।
चरण बने हैं युगल पदों के
हमें मिलेंगे अवश्य बढ़कर॥'

चलीं वहां से, सुमन अनेकों
मिले धरा पर, कहा सखी ने—
'सुकेश वेणी सम्हालने को
सुपुष्प संचित किये उन्होंने॥'

हुआ सभी को अपार विस्मय
चलीं, किये थीं पदावलम्बन।
गईं विपिन से सुदूल पर वे
जहां किया था सुकेश-गुंथन॥

कहा किसी ने—'सखी! प्रिया की
भुजंग वेणी गई सम्हाली।
सुकेश—अवशेष भी पड़े हैं
पड़ी उधर देख! तैल-प्याली॥'

कहा तभी अन्य गोपिका ने—
'अवश्य होंगे यहीं'—कहीं वे।
छुपे हुए हैं हमें चिढ़ाते
सुदूर हमसे गये नहीं वे॥'

अनेक बोलीं गयंद-गतिता—
'प्रभो! कहां हो, हमें बताओ?
न जानतीं हम कहां छुपे हो?
कृपा करो हे कृपालु! आओ॥

प्रभो! हृदय है नितांत चिन्तित
बना कठिन हाय! प्रेम-साधन।
ससक रही हैं विरह—व्यथा में
न मृत्यु ही है, न नाथ! जीवन॥

वृथा मरण भी न चाहती हैं
न यह जगत ही हमें सुहाता।
बिना तुम्हारे न सुख कहीं भी
न गेह भाता, न स्वर्ग भाता॥

प्रभो! तुम्हारी समस्त जगती
विरुद्ध अपने हमें दिखाती।
धधक रही है महान ज्वाला
परन्तु वह भी नहीं जलाती॥

सुकाष्ठ हो दग्ध कोयला बन
भस्म होता, हम आकुला हो—
रहीं अभागी, जलीं अधिक, पर
न भस्म बनतीं, न कोयला हो॥'

विलाप करतीं चलीं विपिन में—
'कहा गये आज श्यामसुन्दर ?
बिना तुम्हारे प्रभो! हमारी
बिगड रही है दशा निरन्तर॥

कदम्ब-तरु के निकट प्रिया भी
वियोग-मग्ना विलाप करतीं।
खड़ी हुईं थीं अगाध दुख में
गईं वहीं गोपिका विचरतीं॥

विलोक विस्मित सभी हुईं थीं
कहा किसी ने—'कहो सहेली !
गये तुम्हें भी विसार क्या, जो
विकट विपिन में खड़ी अकेली ?'

कहा प्रिया ने—'चले गये वे
मुझे विपिन में तजी अकेली ।
हुई दशा यह विरह—व्यथा में
न धैर्य पाता हृदय सहेली ।।'

सुना सभी ने, चकित हुईं वे
चलीं प्रभू को पुकारती-सीं ।
सम्हल रहीं थीं स्वयं न, तो भी
व्यथित प्रिया को सम्हालती-सीं ।।

न धैर्य ही था, न अश्रु रुकने
कहा–'प्रभो ! अब तुरन्त आओ ।
भटक रही हैं विकट विपिन में
उबार लो अब, सुपथ बताओ ।।

बना प्रभो ! आज वर्ष क्षण भी
न कट रहा है समय हमारा ।
यही बतादो न ! नाथ आकर
कि किसलिये है हमें विसारा ।।

सखे ! हमें जो सुभव्य दर्शन
तुरंत देंगे न आप आकर ।
सभी मरेंगी सुकूल पर ही
अवश्य हीरक-कनी चबा कर ॥

सुनों, सुनों ! हम भयातुरा हैं
बिना तुम्हारे नितांत चिन्तित ।
न ज्ञान है, ध्यान, मान ही है
हुआ हृदय मध्य प्रेम संचित ॥

कहा रहे आप भक्त-वत्सल
निभा सके हो नहीं हमें तो ।
सनेह करती सदा रही हैं
मिला तिरस्कार ही हमें तो ॥'

तभी विलोका किसी सखी ने—
प्रभू प्रिया के निकट खड़े हैं ।
सुवेश अद्भुत रहा अलङ्कृत
सुरत्न मौक्तिक धवल जड़े हैं ॥

कहा उन्होंने—'प्रसन्न हूँ मैं
विसार संताप धैर्य लाओ ।
तजो विकलता-व्यथा हृदय की
अशांत हो अब न गोपिकाओ ॥

न रुष्ट होना उचित प्रिये ! है
अवश्य तुमने विपत्ति झेली ।
कहा प्रिया ने—'कहां गये थे
विसार वन में मुझे अकेली ?

न संग कोई, भयावनी निशि
चले गये तुम दया न आई, ?
विकट विपिन में भटक रही थी
भयातुरा मैं अधिक रुलाई ॥'

'समुद्र-तट पर चला गया, मैं
किया प्रिये! ध्यान हंस मुनि ने ।
पुकारता भक्त आर्त स्वर में
तुरंत जाता'—कहा उन्होंने—

वहां असुर एक मत्स्य बन कर
पकड़ रहा था महर्षि को जब ।
विपत्ति में देख संत-जन को
तुरंत भागा चला गया तब ॥

उठा सुदर्शन असुर संहारा
विपत्ति से यों उबार जन को ।
तुरंत ही फिर चला वहां से
सुक्षीरसागर गया शयन को '॥

पुकार सुन कर प्रिये ! तुम्हारी
उठा तुरत, आगया यहां हूँ ।
न रुक सकूं दुःख जान जन का
स्वभाव से मैं विवश हुआ हूँ ।।'

कहा तभी एक गोपिका ने—
'न भक्त क्या हम प्रभो ! तुम्हारे ?
न हो सके जो हमें अभी तक
सुदिव्य दर्शन विभो ! तुम्हारे ?'

कहा उन्होंने—'कपट न तुममें
रहा तुम्हारा पवित्र अंतर ।
रहे अधूरी न लालसा भी
जपा मुझे भक्ति से निरंतर ।।'

दिव्य दृष्टि सब की हुई
देखी छवि अभिराम ।
शेष-अंक-आसन सुखद
सोहें राधेश्याम ।।
अष्ट सखी ले कर-चँवर
डुला रहीं सुख मग्न ।
अष्ट सखा चहुं ओर रह
करते प्रभु-गुण-गान ।।

होगया प्रकृति में परिवर्तन
जब दिव्य छटा चहु ओर हुई।
वह रूप अनूप सुखद देखा
सखियां आनन्द-विभोर हुईं ॥

सब हुई प्रेम-मद-मत्त सखी
नर्तन करतीं-सी डोल रहीं।
नभ से सुर-बाला सुमन डाल
जय 'राधा-माधव' बोल रहीं ॥

अष्टम सर्ग

चली बीत जब रैन, तारिकाएँ छुपीं
मिटने लगी गगन से निशि की कालिमा।
स्वच्छ हुआ, कुछ लोहित-सा वह होचला
बढ़ती जाती थी ऊषा की लालिमा॥

विहँस उठीं कलिकाएँ मधुर विकास पा
शीतल मंद समीर सुगंधित वह चली।
हुए केलि-रत बहु-विहंग थे बोलते
चिड़ियाएँ संदेश भोर का कह चलीं॥

सभी सरोवर मध्य कमलिनी खिल उठी
किन्तु, चंद्रमा कान्ति अपनी खोरहा।
अब तक व्रज-वनिताएँ तन्मय थीं यहाँ
महारास कालिंदी-तट पर होरहा॥

विरह-विमोहनि मुरली मस्त बना रही
जिसकी गत पर पांव सभी के पड़ रहे।
देख रहे यह लीला सुरगण भी खड़े
क्षितिज त्याग कर सूर्य गगन में चढ़ रहे॥
भूल छलागें भरना मृग सयत खड़े
देख रहे थे लीला वे मोहित हुए।
झुण्ड मयूरों का तन्मय बैठा जहाँ
कुछ कपोत के जोड़े भी थे आगए॥

कोकिल भी हो मौन भूल सब कुछ गई
मग्न हुआ शुक आज स्वयं में खोरहा।
मैना का भी बोल कंठ में रुक गया
महारास कालिंदी-तट पर होरहा॥

कीटों को भी ध्यान नहीं कुछ था रहा
भूल खाद्य की चिन्ता वे भी झूमते।
वंशी के स्वर पर ही मोहित हो उठे
वन के प्राणी रुके सभी जो घूमते॥

वृक्षों के पत्तों का कम्पन भी रुका
किन्तु पुष्प गिरते ज्यों वर्षा होरही।
चरणों पर गिर कलिकाएँ कहती लगीं—
'वही अभागी इससे वंचित जो रही॥'

सभी ओर का वातावरण निस्तब्ध था
मानो यह जड़-जंगम सब ही सोरहा।
केवल वंशी के स्वर ही थे गूंजते
महारास कालिंदी-तट पर होरहा॥

विस्फारित नयनों से थे सब देखते
निकल कूल पर आये जल के जन्तु भी।
सभी सगाठित बैठ गये मृदु रेणु पर
मोहित थे सब हुए प्रकृति के तन्तु भी॥

सभी देह-धर आज हुए उन्मत्त थे
झूम रहा था जोड़ा एक भुजंग का।
दूर-दूर से प्राणी खिंचते आरहे
जिनमें आया शावक एक कुरंग का॥

कहते थे सब जीव परस्पर—'आज तो
वही अभागा इससे वंचित जो रहा।
सभी ओर उत्साह और आह्लाद था
महारास कालिंदी-तट पर होरहा॥

हरिणी एक छलांगें भरती आरही
जो विस्फारित-सी विस्मित-सी होगई।
खड़ी अटल-सी और अचल-निस्तब्ध-सी,
नूपुर की झङ्कारों में वह खोगई॥
किये अनुसरण, या उसको था खोजता?
पीछे से उसका नर भी आया वहां।
पर उसके नयनों में कुछ उन्माद था
भूल उसे, वह बैठा हरिणी थी जहां॥

स्वयं सुरीले-स्वर में था वह बंध गया
नहीं जानता था—जगता या सोरहा?
वह था, या क्वण नूपुर का नाद था
महारास कालिंदी-तट पर होरहा॥

मुरली को जब नहीं बजाते थे कभी
बढ़ जाती थी किन्तु तीव्रता नृत्य में।
सभी थिरकने लग जाते थे जीव भी
आती थी तब अति सजीवता नृत्य में॥
था लगता यह जग सारा ही नाचता
मानो इसमें केवल नर्तन सत्य है।
उड़ती थी जो ब्रज-रज पग के साथ में
लगता---उसके भी कण कण में नृत्य है॥

नभ में किन्नर- यक्ष सभी थे नाचते
मानो अखिल विश्व ही अस्थिर होरहा।
ता-थेई ता-थेई की ध्वनि थी उठी
महारास कालिंदी-तट पर होरहा ॥

देख अलौकिक लीला दिनकर भी रुके
आज प्रकृति की सभी व्यवस्था थी टली।
उमड-उमड कर यमुना लहरें ले रही
मानो वह फिर प्रभु-पद छूने को चली ॥

जल में पल्लव पडे थिरकते-से लगे
और भवर में पड़ नृत्य--सा कर रहे।
निकल भवर से चले कूल की ओर वे
लगते थे जैसे कछार पर चढ़ रहे ॥

जभी लौटते टकरा कर वे कूल मे
फिर बढ़ते ज्यो यत्न पुनः कुछ होरहा।
असफल थे, पर साहस था--उल्लास था
महारास कालिंदी-तट पर होरहा ॥

लगते थे—ज्यो शत्रु--दुर्ग को जीतने
बढते हो कापुरुषो का दल चीर कर।
लिये हथेली पर सिर आगे को बढे
चले जारहे दृढ़-प्रतिज्ञ कुछ वीरवर ॥

यहां दुर्ग के रक्षक से कर युद्ध वे
प्रत्याक्रमण न सहते पीछे हट रहे ।
किन्तु शत्रु का बल कुछ घटता देख कर
पुनः आक्रमण करते उस पर चढ़ रहे ॥

किन्तु पुनः वे असफल होकर लौटते
एक-एक कर उनका साथी खोरहा ।
पद्म-पंखरी भी ऐसे ही खो चलीं
महारास कालिंदी-तट पर होरहा ॥

एक-एक कर व्रज-वनिता पीछे हटीं
श्रम-कणकी सरिता--सी वपु से बह चली ।
शिथिल हुईं जो, मृदु रज पर जा बैठतीं
घूमिल चितवन अंतर-गाथा कह चली ॥

होजातीं जो स्वस्थ, खड़ी होकर वही
करने लगतीं नृत्य साथ में पूर्ववत् ।
उद्वेलित लहरों-सा मन था होरहा
पुनः सभी होगईं अलौकिक सुख--निरत ॥

पग--मूलों की सभी शिथिलता थी मिटी
घूमिलता का भास नहीं अब होरहा ।
कंकण-क्वणित मधुर स्वर लय की गूंज थी
महारास कालिंदी--तट पर होरहा ॥

जितने जड़-चेतन प्राणी आये यहां
बजती थी जब वेणु स्वयं को भूलते।
केवल एक अचेतन गति के चक्र से
चले ठिठकते से रुकते-से झूलते ॥
स्वर-लहरी में हुआ तरंगित व्योम भी
श्याम मेघ उसमें चक्रेलित होरहे।
विद्युत चमकी, सुधा बिंदु भी थीं पड़ीं
गति थी सब में, किंतु स्वयं में खोरहे ॥

महा-नृत्य में निरत पवन था झूमता
सौरभ से दिगंत था पूरित होरहा।
उस अनन्त में भी थी हलचल मच गई
महारास कालिंदी-तट पर हो रहा ॥

देखा प्रभु ने जब राधा भी थीं शिथिल
बोले उनसे—'अब कर लो विश्राम भी।
हुआ प्रवाहित मुख पर श्रम कण स्रोत-सा
करते-करते रास हुआ है याम भी ॥'
बोलीं राधा-'नाथ! आप जब संग हैं
तो कैसा श्रम? चिन्ता क्या दिन रात की?
यही कामना—रहूँ सदा ही साथ ज्यों
चातक का ही साथ चाहती चातकी ॥'

कहा कृष्ण ने—'प्रिये ! तुम्हारी कामना
है सराहने योग्य और शाश्वत महा।
मेरा मन भी सुखी तुम्हारे संग में
होता हूँ मैं कितना आनंदित अहा !'
यह कह कर कुछ समय किया विश्राम था
राधा के श्रम-बिन्दु स्वकर से पोंछते।
गई शिथिलता, पाया नव उल्लास था
निर्हँस रहे थे माधव उन्हें बिलोकते ।।
पकड़ प्रिया-कर कालिंदी के नीर में
हो प्रविष्ट वे करते विविध विनोद थे।
अंजलि में ले वारि परस्पर डालते
मज्जन करते युगल सहास समोद थे ।।
जल में मृदुल मृणाल प्रवाहित हो रही
अर्द्ध-विकसिता एक कमलिनी से लगी।
जैसे ही घनश्याम ओर उसको बढ़े
तभी प्रिया भी उसे पकड़ने को भगीं ।।
झपट कमलिनी पकड़ कूल पर आगईं
लगीं उस समय अति प्रफुल्ल छवि-मूर्ति यह।
तभी सुशोभित खिली दंत-मुक्तावली,
विहस कहा जय—'कहा गई है स्फूर्ति वह ?

झपटे थे पर नहीं पकड़ पाये उसे
व्यर्थ परिश्रम गया नहीं क्या आपका ?'
विहंस कहा नटवरनागर ने—'क्या कहूँ
ठगा देख कर स्फूर्ति तुम्हारी राधिका !!
देह अधिक कमनीय मृदुलता भी लजी
इस पर भी विस्मय-प्रद इतनी स्फूर्तिता !
लगी-सामने आज हुई साकार ज्यों
स्फूर्तिता और चंचलता, कमनीयता ।।'
बोलीं राधा—'लाभ नहीं उनसे प्रभो !
है अपूर्ण तो कैसी त्रय-साकारिता ?
व्यर्थ स्फूर्तिता चचलता कममीयता
हुई मूर्त्त सम्मुख जब व्यापक-भूरिता ।'
कहा कृष्ण ने—'प्रिये! वाक्-पटु हो अधिक
रही वाद में विजय तुम्हारी सर्वदा ।
अहा ! सुशोभित है कैसी यह कमलिनी
इस मृणाल को दे दो मुझे प्रियवदा!'
'नहीं दे सकूंगी मृणाल मैं आपको'
बोलीं राधा—'श्रम से लाई हूँ इसे ।
वेणी का शृंगार बनेगी कमलिनी
सभी सुमन उसमें से देखो हैं खसे ।।

बोले कृष्ण—'न वेणी के उपयुक्त यह
कोमलतम यह पुष्प विपिन में खिल रहे।
जो बिखेरते हैं सौरभ उन्मत्त हो
मलयानिल के झोंकों से वे हिल रहे॥'
राधा बोली—'आज कमलिनी ही प्रभो!
इस भुजंग वेणी में गूंथी जायगी।
भला योग्य यह उन कर-कमलों के कहाँ?
केवल इन केशों में शोभा पायगी॥'
माधव बोले—'हुई कमलिनी म्लान यह
उपवन में चल करें अभी संचित सुमन।
एक कमलिनी क्या, अनेक उस ताल में
उत्पल से हैं लसी हुई उत्फुल्ल-मन॥'
राधा बोली—'अन्य सभी वे व्यर्थ हैं
यही कमलिनी मेरे मन को भा रही।
स्वयं देख लो कैसी यह उन्मत्त है
अभी अर्द्ध-विकसित है पर मुस्क्या रही॥'
देखे माधव बढ़े आ रहे हैं इधर
तभी शीघ्र वे तरु के झुरमुट में चलीं।
चले वेग से प्रिय भी उनको खोजते
सघन आम्र के पीछे छुपती वे मिलीं॥

देख कृष्ण को वे सतर्कता से खड़ीं
बढ़े कृष्ण भी उन्हें पकड़ने को इधर।
चलीं वेग से तरु की परली ओर वे
धाये वे भी, गईं राधिका थीं जिधर॥
अब दोनों ही घूम रहे थे चक्र-से
शिथिल हुई राधा, छाये मुख-स्वेद-कण।
लगे टपकते बिन्दु चमकते-से सुखद
सदा दमकते रहते ज्यों मणि-रत्न-गण॥
बैठ गईं वे सभी आम्र की डाल पर
आत्म समर्पण करके भी मुस्क्या रहीं।
निकट बैठ कर माधव वेणु बजा रहे
तभी वहां ब्रज-वनिताएँ सब आ रहीं॥

अंतर उद्वेलित हुआ
सुन वंशी की तान।
सभी उच्च स्वर से वहां
गातीं प्रभु-गुण-गान॥

बज रही बांसुरी मोहन की
स्वर-लहरी से सब मस्त हुए।
सुध-बिसर सभी, उल्लसित सभी
अति विह्वल औ उन्मत्त हुए॥

लय गान चला पालाओं का
पत्ती के स्वर को लय देता।
यह पदा तरंगें अंतर में
इस जगती को विस्मय देता ॥

आनंद-विभोर हुए थे,
इस जगती के सब प्राणी,
जो प्रभु के गुण को गाती,
वह धन्य क्यों नहीं वाणी ?

नवम सर्ग

श्रीराधा बैठीं उपवन में
करतीं थीं प्रियतम का ध्यान।
तभी वहां कुछ सखियां आईं
किन्तु न था उनको कुछ ज्ञान॥

तन्मयता में अधिक देख कर
चन्द्रावलि बोली झकझोर—
बैठी हो तुम आज किसलिये
सजनी! ऐसी आत्म-विभोर?

सखी ! इसी तन्मयता में क्या
करती हो प्रियतम की याद।
लगता है यह सभी कहानी
कहता नयनों का उन्माद॥

चिंतित क्यों हो आते ही
होंगे मनमोहन चुटपुट में।
यहीं कहीं छुप कर बैठे
होंगे पेड़ों के झुरमुट में॥'

कहा विसाखा ने—'हे सजनी !
भोले हैं इनके नटवर।
किन्तु मानिनी ! कैसा उनको
नचा रही हो इंगित पर ?

मनमोहन तो तुम पर ही
करते हैं अपना निष्छल प्यार।
कहो कभी क्या मान सकी हो
सजनी ! तुम उनका आभार ?,

तभी कहा चन्द्रावलि ने—
'नटवर इनके अनुकूल हुए।
हो गम्भीर इनने बदले वे
नटखटपन भी भूल गये॥

रहते सदा तुम्हारे वश में
निकल न फंदे से पाते।
अलसाये नयनों से इकटक
तुम्हें देखते रह जाते॥

अपनी रूप-छटाओं में—
तुमने उनको भरमाया है।
सखी ! धन्य हो तुम, जो ऐसा
भोला प्रियतम पाया है॥'

विहस तभी बोलीं श्रीराधा—
'मनमोहन मेरे सिर-ताज।
मिथ्या कहते तुझे निगोड़ी !
तनिक नहीं आती है लाज ?

मैं उनको क्या भ्रमा सकूंगी
वे हैं स्वयं गुणों की खान।
मैं ही सदा भ्रमी रहती हूँ
सुन उनकी वंशी की तान॥

अरी सखी ! क्या तुझको भी हैं
भ्रमा रहे वे मनमोहन ?
जान रही हूँ—कर बैठे कुछ
तुझ पर भी ये सम्मोहन॥

सखी ! इसी तन्मयता में क्या
करती हो प्रियतम की याद।
लगता है यह सभी कहानी
कहता नयनों का उन्माद॥

चिंतित क्यों हो आते ही
होंगे मनमोहन चुटपुट में।
यहीं कहीं छुप कर बैठे
होंगे पेड़ों के झुरमुट में॥'

कहा विसाखा ने—'हे सजनी !
भोले हैं इनके नटवर।
किन्तु मानिनी ! कैसा इनको
नचा रही हो इंगित पर ?

मनमोहन तो तुम पर ही
करते हैं अपना निश्छल प्यार।
कहो कभी क्या मान सकी हो
सजनी ! तुम उनका आभार ?,

तभी कहा चन्द्रावलि ने—
'नटवर इनके अनुकूल हुए।
हो सभीत इतने बदले वे
नटखटपन भी भूल गये॥

रहते सदा तुम्हारे वश में
निकल न फंदे से पाते।
अलसाये नयनों से इकटक
तुम्हें देखते रह जाते॥
अपनी रूप-छटाओं में—
तुमने उनको भरमाया है।
सखी! धन्य हो तुम, जो ऐसा
भोला प्रियतम पाया है॥'
विहंस तभी बोलीं श्रीराधा—
'मनमोहन मेरे सिर-ताज।
मिथ्या कहते तुझे निगोड़ी!
तनिक नहीं आती है लाज?
मैं उनको क्या भ्रमा सकूंगी
वे हैं स्वयं गुणों की खान।
मैं ही सदा भ्रमी रहती हूँ
सुन उनकी वंशी की तान॥
अरी सखी! क्या तुमको भी हैं
भ्रमा रहे वे मनमोहन?
जान रही हूँ—कर बैठे कुछ
तुम पर भी वे सम्मोहन॥

उनकी चितवन है आकर्षक
निश्चय ही ये हैं चित-चोर।
चुरा लेगये हैं मन तेरा
क्या वे नटखट नंदकिशोर ?

हो अधीर मत सखी ! तुझे
नटवरनागर मिल जायेंगे।
तुझे देख होंगे प्रसन्न वे
जब उपवन में आयेंगे॥

कह दूंगी मैं उनसे—'प्रियतम !
चन्द्रावलि तुम पर अनुरक्त।
इसे उबारो आप, भले ही
कर देना मुझको परित्यक्त॥

मनमोहक, आकर्षक, सुन्दर
शीलवंत सुकुमारी है।
अलबेली तो है लेकिन यह
निश्चय ही सन्नारी है॥

किन्तु तुनक जाती है क्षण में
इसका तनिक न करना ध्यान।
करके विनय मनाते रहना
सदा बना रखना सम्मान॥

कुछ आवेश इसे आये तो
बन जाना तुम स्वयं उदार ।
तनिक क्रोध में मिटा न देना
इसकी आशा का संसार ॥

प्रेमी सदा प्रेमिकाओं पर
न्यौछावर करते तन-मन ।
समय पड़े पर नहीं चूकते
अर्पण कर देते जीवन ॥

निश्चय ही नटवरनागर
तेरे बंधन में आयेंगे ।
इस मतवाली मूरति पर वे
रीझ अवश ही जायेंगे ॥

पर, उनको अपने वश में कर
मुझको मत विसरा देना ।
कभी-कभी तो सजनी ! उनको
मेरी याद करा देना ॥'

बोली ललिता तभी —'सखी ! क्या
उलटी बात बनाती हो ?
नटवरनागर को बंधन से
छोड़ कहां तुम पाती हो ?

बिना तुम्हारी इच्छा, वे क्या
कर पाते हैं कोई काम ?
सदा तुम्हारे नयनों में ही
चल पाते हैं सुन्दरश्याम ॥

यह वेदगी नारि इन्हें
मोहित कैसे कर पायेगी ?
सखी ! तुम्हारा-सा आकर्षण
कहो, कहां से लायेगी ?

मनमोहन को वश में क्या
कर पायेगी भोली-भाली
बांध रही हैं इनको तो
केवल यह आंखें मतवाली ॥

कहो ! कभी क्या भोला मानव
इनके सम्मुख टिक पाया ?
सीधे-साधे प्राणी को तो
सदा इन्होंने भरमाया ॥

वही प्रेम पा सका सदा जो
इनका-सा ही मन पाया ।
किन्तु, इन्होंने निश्छल प्रेमी
हर प्रकार से तरसाया ॥

सरल हृदय जो रहा, उसे वे
मूर्ख बनाते आये हैं।
बातों में आगया उसे वे
सदा छकाते आये हैं॥'

कहा विसाखा ने तब—'सजनी!
करती हो तुम नये प्रयोग।
आज कृष्ण, राधा दोनों पर
बना रही हो यह अभियोग?

कभी लाञ्छन इन दोनों पर
नहीं लगाने पाओगी।
इसके लिये प्रमाण जुटाकर
सखी! कहाँ से लाओगी?

सरल, उदार श्यामसुन्दर हैं
श्रीराधा भोली-भाली।
दोष लगाती है क्यों इन पर
ओ! उच्छृंखल! मतवाली?'

श्रीराधा बोलीं तब—'सजनी!
यह कुछ नई नहीं है बात।
करते आये चंचल मानव
सीधों पर ऐसे आघात॥

कुटिल जीव तो राजनीति का
दाव लगाये रहते हैं।
सदा क्रूर मानव अपने
हथियार सजाये रहते हैं ॥

किन्तु, टूट जाती है उनकी
कच्चे लोहे की तलवार।
तो मन की मन में रह जाती
हो जाता है निष्फल वार ॥'

इसी प्रकार वहां पर बैठीं
सभी सखी करतीं परिहास।
बोली तभी एक ब्रजबाला
आकर श्रीराधा के पास ॥

'सुनों सखी ! मथुरा से कोई
सुन्दर मानव आया है।
कहते हैं अक्रूर उसे
आदेश कंस का लाया है ॥

कंसराज कर रहे वहां पर
धनुष-यज्ञ का आयोजन।
तभी करेंगे मल्ल-युद्ध का
वृहद् प्रदर्शन योद्धाजन ॥

कंसराज के वीर मल्ल
अपना कौतुक दिखलायेंगे ।
अन्य देश-वासी दर्शक भी
इस उत्सव में आयेंगे ॥

दिया निमंत्रण नंदराय को
वे अवश्य मथुरा आवें ।
कृष्ण और बलराम ग्वाल
सब को ही अपने संग लावें ॥

शोभा होगी उत्सव की, वे
भी मानेंगे अति आभार ।
कहते हैं—बाबा ने उनका
किया निमंत्रण भी स्वीकार ॥

ग्वालों सहित नंद बाबा
बलराम और नटवरनागर ।
गोरस-माखन भेंट करेंगे
राजा को मथुरा जाकर ॥

सुनते ही यह अप्रिय बात वे
भूल गईं सारा उल्लास ।
समाचार देने वालों पर
सहसा कर न सकीं विश्वास ॥

चली यहां से मतवाली-सी
नयनों में बादल छाये।
नंद-भवन से इसी समय
अक्रूर निकल बाहर आये॥

बोलीं उनको देख—'तुम्हारे
दर्शन को मैं आई हूँ।
यहां किस लिये आप पधारे ?
जान नहीं यह पाई हूँ॥

कंसराज का संदेशा ले—
कर क्या तुम ही आते हो ?
नंद-नंदन-मनमोहन को
तुम ही मथुरा ले जाते हो ?

तुम्हीं पाहुने बन कर क्या इस
नंद-भवन में ठहरे हो ?
ऊपर से हो सीधे-सीधे
अंतर से कुछ गहरे हो ?

कहो-कहो, ऐ वीर ! आज
जाते हैं सुन्दरश्याम कहां ?
जीवन-धन के बिना, हाय ! मन
पायेगा विश्राम कहां ?

राज-सभा के चतुर सभासद !
मथुरा से तुम आये हो।
हम सबको दुख-दायक-सा
आदेश कंस का लाये हो॥

कंसराज की कपट-योजना
के भी साथी हो तुम शूर।
जान गई हैं नाम तुम्हारा
कहते हैं तुमको अक्रूर॥

तुम तो हो विद्वान, भला, क्यों
नहीं कंस को समझाते ?
निर्धन-निर्बल प्रजाजनों से
वैर-भाव क्यों धर लाते ?

कहो, कभी गो-वत्स, मत्त गज
को अपना बल दिखलाता ?
अरे ! कभी मृग शावक भी
केहरि से टक्कर ले पाता ?

ऐसे ही यह गोप-पुत्र, नृप
का बिगाड़ क्या पायेंगे ?
उन्हें भ्रान्ति निर्मूल हुई, यह
कैसे शीश उठायेंगे ?

राजा और रंक में कैसा
डाल रहे हो तुम संघर्ष ?
माना—होंगे मिटा, किन्तु क्या
निकलेगा इसमें निष्कर्ष ?

अरे! निहत्थे ग्वालों को क्यों
छेड़ रहे हो मदमाते ?
रण का है उत्साह, क्यों नहीं
किसी वीर से भिड़ जाते ?

रण से इनका काम न कुछ, यह
केवल गाय चराते हैं।
सीधे-सादे निर्बल मानव
वैर न करने जाते हैं।

कहो, किस लिये कंसराज ने
बुलवाये घनश्याम यहां ?
जीवन-धन के बिना, हाय! मन
पायेगा विश्राम कहां ?

वैर-प्रीत यह दोनों ही
होते समान बल वालों में।
वैर कभी हो सकता है
नरनाथ और इन ग्वालों में ?

इस पर कैसा कोप, सदा
रहता जो अपने कर जोड़े ?
नहीं मारना धर्म उसे, जो
युद्धस्थल से मुँह मोड़े ॥

रथारूढ़ हो विरथ शत्रु पर
नहीं चलाते हैं तलवार ।
कभी मारते नहीं उसे, जो
भाग रहा सुन कर ललकार ॥

वह भी तो वध-योग्य नहीं, जो
त्राहिमाम् कह कर आता ।
भय से थर-थर कंपित हो, या
भूल मानता, पछिताता ॥

बिना विचारे ही जो शासक
निरपराध को देते दंड ।
उनकी राज्य व्यवस्था सारी
होजाती है खंड-खंड ॥

अनुचित दंड, कुदंड बना, जब
हो जाता है कुपित महान ।
बढ़ जाते अपराध देश में
छा जाता है अति अज्ञान ॥

ये हैं मूर्ख अनाचारी, जो
करते दंडित बिना प्रमाण।
न्याय-नीति से परे उन्हें—
समझो केवल मिट्टी निष्प्राण॥

सदाचार-रत जो, उनको
दंडित करते हैं मतवाले।
किसी विश्व शासक ने, सज्जन
भी बंदीगृह में डाले?

वैर-भाव का काम नहीं कुछ
रहते सुन्दर श्याम जहां।
जीवन-धन के बिना, हाय! मन
पायेगा विश्राम कहां?

कहो, अरे अक्रूर! सोचते
हो, क्या तुम अपने मन में?
आग लगाने आये हो क्यों
हरे-भरे इस व्रजवन में?

आह! किसलिये स्वर्णिम फंदे
बिछा रहे छलनाओं के?
नहीं द्रवाते हैं क्या तुमको
आंसू व्रज-ललनाओं के?

रोते हैं वे वृद्ध गोप—
बैठे उस खंडहर के आगे।
सभी सोचते—आज अकारण
ही वे जाते हैं त्यागे॥

कंसराज के भय से बाबा
भेज रहे उनको पर-वस।
रोक रहे हैं, तो भी निकले
पड़ते हैं आसू बरबस॥

उनके अंतस्तल में देखो
धधक रही है भीषण आग।
इन नयनो से देख सकोगे
क्या तुम उनका उत्कट त्याग ?

कहो ! भवन में नंदरानी की
दशा देख क्या पाये हो ?
मूक-व्यथा को समझ रहे हो
फिर भी नहीं लजाये हो ?

मनमोहन के बिना यशोदा
कैसे धीरज लायेगी ?
त्याग अन्न-जल पड़ी रहेंगी
धेनु सदृश डकरायेंगी॥

अरे ! वृद्ध दम्पति के कारण
ही बन जाते तनिक उदार !
छीन रहे बूढ़े की लकुटी
मन में करते नहीं विचार ॥

सभी पुकारेंगे वियोग में—
कृष्ण और बलराम कहां ?
जीवन-धन के बिना, हाय ! मन
पावेगा विश्राम कहां ?

व्याकुल छोड़ यहां सब को ही
इन्हें साथ ले जाओगे !
कंसराज के साथी हो तुम
दया कहां से लाओगे ?

करो तनिक अनुमान, बीतती
होगी कैसी इस मन पर ?
क्या प्रभाव होगा वियोग का
नंद, यशोदा, ब्रज-जन पर ?

तुम तो हो अक्रूर, किन्तु क्यों
क्रूर आज बनते जाते ?
आह ! बरसते इन नयनों को
भी तुम देख नहीं पाते ?

या भूले वे पंडित-जन, कुछ
उलटी गणित लगा बैठे ?
आह ! क्रूर मानव को कैसे
वे अक्रूर बना बैठे ?

यह अनर्थ है—हृदय-हीन को
कह डालें करुणा-सागर ।
वही हुआ अंधे मानव का
नाम नयनसुख बतलाकर ॥

नयनों से क्या लाभ, नहीं जब
उनमें रहा नयन-तारा !
कहाँ चाँदनी, चन्द्र नहीं तो
आन रहा यह जग सारा ॥

प्राण-बिना यह देह व्यर्थ है
मिट्टी ही रह जाती है ।
ज्योति-बिना दीपक की बत्ती
क्या प्रकाश दिखलाती है ?

आह ! वधिक क्या कभी सोचता
हत्या में भी है कुछ पाप ?
नहीं जानता निर्दय मानव
कैसा होता है अभिशाप ?

अरे, बिना ब्रजराज भला
ब्रज-जन को है आराम कहाँ ?
जीवन-धन के बिना, हाय ! मन
पायेगा विश्राम कहां ?

कहो, अरे अक्रूर ! कहां ले—
जाते हो जीवन-धन को ?
बिना प्राणपति शांति कहां मिल—
पायेगी मेरे मन को !

कैसी होगी दशा, चले
ब्रजराज यहां से जायेंगे ?
विरह-वेदना में घुल-घुलकर
आंसू सभी बहायेंगे ।।

धेनु और उनके बछड़े
रो-रो कर देंगे अपने प्राण।
कहो, किसलिये बना रहे हो
अपना यह अंतर पाषाण ?

यह कदम्ब का वृक्ष, रोक
पायेगा क्या वर की मुस्कान !
जिसकी छाया में निकला—
करती थी वह मुरली की तान ।।

उस उन्नत वट के नीचे भी
करते कभी-कभी विश्राम ।
रोम-रोम उसका रो देगा
चले जायंगे जब घनश्याम ॥

जगती पर सौरभ बिखेरता
वह गुलाब है सुन्दरतम ।
जिसके, कभी-कभी चुभ जाते
हाथों में कांटे निर्मम ॥

किन्तु तनिक भी कष्ट न होता
बढ़ जाता मन में उल्लास ।
कांटे बनते पुष्प और बन
जाती थी वह कसक मिठास ॥

आह ! अभागा जानेगा जब
चले गये हैं मुरलीधर ।
कली-कली पत्ती-पत्ती झड़
जायेगी आंसू बन कर ॥

पशु-पत्ती भी पूछेंगे—
नटवर नागर घनश्याम कहां ?
जीवन-धन के बिना, हाय ! मन
पायेगा विश्राम कहां ?

वह मैना जब देखेगी—
जाते हैं उसके पालनहार।
तो अभागिनी अपने मन में
क्यों न पायगी कष्ट अपार ?

वह कपोत का जोड़ा भी—
प्रियतम ने मन से पाला था।
नित प्रभात होते ही पहले
उनको दाना डाला था॥

कभी-कभी उनका मुक्त तन, वह
पहुचा देते थे संदेश।
कभी प्राणवल्लभ से जाकर
कह देते मेरा उद्देश॥

किंतु, आज उनको भी तजकर
जब मनमोहन जायेंगे।
अकस्मात् के इस वियोग को
कैसे वे सह पायेंगे ?

वह मयूर भी सदा लिपट
जाता प्रियतम के अंगों में।
कभी नाचने लगता था—
होकर मदमत्त तरंगों में॥

उसके सिर पर रख देते थे
मनमोहन जब अपना हाथ।
सभी ज्ञान खोकर अपना वह
लग जाता था उनके साथ॥

किंतु, आज वह देखेगा
अपने प्रिय स्वामी को जाता।
तो नयनों के आंसू कैसे
रोक सकेगा मदमाता ?

कहो, तुम्हें क्या नहीं मिला है
उर की करुणा का आभास ?
छीन रहे हो हाय ! आज क्यों
इस ब्रजवन का सब उल्लास ?

ब्रज का पत्ता पत्ता भी
पूछेगा—सुन्दरश्याम कहां ?
जीवन धन के बिना, हाय ! मन
पायेगा विश्राम कहां ?

कभी बिना पतवार पार
नौका को लेजाता कोई ?
कहो, किसी अवलम्ब बिना
जगती पर टिक पाता कोई ?

बड़े वृक्ष भी कटते ही
गिर जाते हैं जैसे पल में।
बिना नीर के मीन नहीं
रह पाती हैं जैसे थल मे॥

हिला-हिला कर दृढ़ नींवों को
ढा देती है भीषण वात।
मिटता मानव, लग जाता है
मर्मस्थल में जब आघात॥

अरे, कहो क्यों मर्मस्थल पर
घात लगाये जाते हो ?
ब्रजजन की आशाओं का
संसार मिटाये जाते हो ?

कहते हैं—यह नंदनँदन
वसुदेव-देवकी के जाये।
यदुवंशी होकर भी इनको
हाय! तुम्हीं लेने आये ?

तुम भी तो यह जान रहे हो—
कंसराज की है कुछ चाल।
फिर तुम अपने जी से ऐसा
पाल रहे हो क्यों जंजाल ?

समझ रही हूँ मैं तो यह—
इसमें कुछ हाथ तुम्हारा है ।
एक तीर से दो शिकार—
करने को अस्त्र सम्हारा है ॥

क्या कुटुम्ब वाले ऐसा ही
जाल बिछाया करते हैं ?
क्या अपने ही अपनों को—
बलिदान कराया करते हैं ?

प्राण नहीं रह पायेंगे, उड़
जायेंगे घनश्याम जहां ।
जीवन-धन के बिना, हाय ! मन
पायेगा विश्राम कहां ?

हाथ तुम्हारा नहीं, वीर !
पाते हो अपने को निर्दोष ।
तो शोषक की इच्छा में चल
कर लेते हो क्यों संतोष ?

करता है अन्याय नृपति तो
कैसा है फिर उससे मोह ?
राज्य-व्यवस्था तोड़-फोड़ कर
राजा से कर दो विद्रोह ?

जब तक दबी रहे चिंगारी
कर नहिं पाती है कुछ चोट।
किन्तु उभड़ने पर - उसके
हो जाता है भीषण विस्फोट ॥

शोषित-पीड़ित जनता ही तो
सदा क्रान्ति करती आई।
सहन शक्ति मिट जाने पर ही
सदा आग लगती आई ॥

कहो, कभी जन-बल के आगे
टिक पाया शोषक कोई ?
बचा क्रान्ति की ज्वाला में
अन्यायों का पोषक कोई ?

देख नहीं पाता है क्षत्री
निर्बल का नृशंस संहार।
घात पड़े पर अड़ जाता है
कर में ले अपनी तलवार ॥

जनता के प्रति अन्यायों को
वीर नहीं सहते आये।
शीश हथेली पर लेकर
रण-चंडी को देते आये ॥

सच्चे यदुवंशी हो तो, कुछ
करके तुम भी दिखला दो।
या इन सब ब्रज-वनिताओं को
ले चल कर वध करवा दो॥

चलने को उद्यत हैं सब ही
जायेंगे घनश्याम जहां।
जीवन-धन के बिना, हाय! मन
पायेगा विश्राम कहां?'

सुन कर यह अक्रूर, न कुछ—
मन में निश्चय कर पाते थे।
नहीं सूझता था कुछ उत्तर
गड़े लाज से जाते थे॥

तभी आगये नंद-भवन से
निकल वहां पर लीलाधाम।
बोलीं राधा—'मुझे छोड़ कर
कहाँ चले मेरे अभिराम?

कहते हैं—मथुरा नरेश ने
प्रियतम! तुमको बुलवाया?
किन्तु, मुझे क्यों नहीं अभी तक
समाचार यह बतलाया?

जान गई हूँ सब कुछ मैं—
पर, प्रियतम ! आप छुपाते हैं ।
सुनती हूँ—अक्रूर-संग—
मथुरा नगरी को जाते हैं ॥

कुछ रहस्य है अवश, कंस ने
जाल बिछाया है कोई ।
है अक्रूर कुटिल, इसने भी
भेद छुपाया है कोई ॥

हे जीवन-धन ! मनमोहन !
यदि आप यहां से जायेंगे ।
तो निश्चय ही राधा के
यह प्राण नहीं रह पायेंगे ॥

बोले माधव—'प्राण-प्रिये !
चिन्ता की कोई बात नहीं ।
कंस कभी मेरे ऊपर, कर
पायेगा आघात नहीं ॥

बाबा, दाऊ और गोप-जन
भी तो जायेंगे सब संग ।
ग्वाल-बाल भी मथुरा जाकर
देखेंगे उत्सव के रंग ॥

फिर क्या कर पायेगा कोई
होगा जब पूरा समुदाय ।
निष्फल सब ही हो जायेंगे
कंसराज के कुटिल उपाय ॥

धैर्य रखो वृषभानु-कुमारी !
मन में साहस को लाओ ।
तर्क-कुतर्क भूल कर सारे
मिथ्या भय को विसराओ ॥

भावी सब से प्रबल, नहीं वह
मिट पाती है किसी प्रकार ।
मृत्यु न आयेगी जब तक, हो-
पायेगा कैसे संहार ?

प्राणी का आगया समय तो
कौन बचाने वाला है ?
विधना के उस अमिट लेख को
कौन मिटाने वाला है ?

मिथ्या भ्रम में भूली हो—
कैसे तुमको विसराऊंगा ?
प्राणप्रिये ! निश्चय मानों, मैं
शीघ्र लौट कर आऊंगा ॥

आवश्यक होगया मुझे अब
उत्सव में मथुरा जाना।
कुछ दिन की है बात प्रिये!
मत कुछ विचार मन में लाना॥

प्रिये! तुम्हारे चन्द्रानन की
याद मुझे जब आयेगी।
तब होगी वह शक्ति कौन-सी
रोक मुझे जो पायेगी?

चल दूंगा तत्काल वहां से
छोड़ जगत के सारे काम।
वृन्दावन में ही आकर फिर
ले पाऊंगा मैं विश्राम॥'

बोली राधा—'प्राणनाथ! मन—
में नहिं शांति हमारे है।
चरणों में रखलो या त्यागो
सब कुछ हाथ तुम्हारे है॥

हे जीवन-धन! इस वियोग को
कैसे मैं सह पाउंगी?
बिना आपके हे मनमोहन!
रो रो कर रह जाऊंगी॥

अतस्तल में हूक उठेगी
छायेगा जब विरह प्रमाद।
रोक सकूँगी कैसे प्रियतम!
अपने मन का घोर-विषाद?
बिना तुम्हारे नर्क बनेगा
राधा के स्वप्नों का स्वर्ग।
विरह-व्यथा में जलने से तो
अच्छा जीवन का उत्सर्ग।।'
यह कह कर वे मौन हुईं, पर
लगा हृदय पर अति आघात।
नयनों में तब देख पड़ी थी
श्रावण—भादों की बरसात।।
बोले माधव—'प्राणवल्लभे!
भूल रही हो कैसे आज?
जग के नव-निर्माण-हेतु
करने हैं हमको कितने काज?
इस ममत्व ने प्रिये! तुम्हारा
अतस्तल भी मथ डाला।
भरा लबालब छलक रहा है
प्रेम-सुधा का यह प्याला।।

प्रेम-मार्ग में चलते हैं जो
शीश हथेली पर लेकर ।
पाते हैं जो प्रेम, धन्य वे
अपने जीवन को देकर ॥

जिनकी वाणी प्रेम-सुधा की
बूँदें बरसाती रहती ।
जिनके उर में सदा प्रेम की
सरिता लहराती रहती ॥

प्राणों का जो सदा प्रेम पर
दाव लगाये रहते हैं ।
धन्य-धन्य ! जो अतस्तल में
प्रेम छुपाये रहते हैं ॥

सच्चा प्रेम रहा मानव की
सभी भावनाओं से भव्य ।
किन्तु प्रेम से भी बढ कर है
जग में प्राणी का कर्त्तव्य ॥

मिथ्या ममता में अपना
कर्त्तव्य न जो कर पाते हैं ।
प्राणप्रिये ! निश्चय ही वे
अपनेपन से गिर जाते हैं ॥

जब-जब धर्म नष्ट होता है
बढ़ जाता है पापाचार ।
तभी मुझे इस जग में आकर
करना होता है संहार ॥

धर्म-ध्वजा को फहरा कर
उसकी रक्षा करता आया ।
संत-जनो के संकट को मैं
युग-युग में हरता आया ॥

इसीलिये, इस व्यर्थ मोह को
राधे ! बिसराना होगा ।
मुझको निज कर्त्तव्य हेतु अब
मथुरा में जाना होगा ॥

समझ रहा हूँ—मुझे न तुम
कर्त्तव्य-विमुख होने दोगी ।
मिथ्या ममता में पड़ कर
चरीत्व नहीं खोने दोगी ॥

हो जाये मुझको विलम्ब भी
किन्तु, धैर्य मत बिसराना ।
मात यशोदा को भी, आकर
कभी कभी तुम समझाना ॥

यह कह कर चल दिये और
रथ पर जा बैठे लीलाधाम ।
किन्तु, चाहने पर भी राधा
दे न सकीं मन को विश्राम ॥

रोक नहीं पाती थीं अपने
नयनों का वह बहता नीर ।
कौन समझता हाय ! वहां पर
इस आकुल-अंतर की पीर ?

नयनों की नीरव भाषा का
कौन आँकता मोल वहां ?
भार हृदय पर बढ़ा, कौन था—
करने वाला तोल वहां ?

धूं-धूं करके जली जारही
थी इच्छाओं की होली ।
श्रीराधा से उसी समय, अति
चिंतित-सी ललिता बोली—

'देखो ! आज विधाता का इस
ब्रज पर कैसा हुआ प्रकोप ?
कंसराज की चालों में आ—
गये हाय ! यह बूढ़े गोप ॥

नहीं सोचते नंदराय भी
क्या इनकी मति सठियाई ?
जिनकी आज्ञा पाकर ही यह
जाते हैं दोनों भाई ॥

और सुनो, आश्चर्य ! स्वयं भी
इस उत्सव में लेंगे भाग ।
देकर भेंट दिखायेंगे सब
राजा को अपना अनुराग ॥

हे ईश्वर ! हे प्रभु ! कोई
अपशकुन इस समय हो जाता !
तो अनिष्ट की आशंका से
निश्चय यह दल रुक पाता ॥

तभी चला रथ, जिस पर बैठे
थे बलदाऊ सुन्दरश्याम ।
नंद-भवन पर खड़ी यशोदा
उसको करते चले प्रणाम ॥

पीछे-से सब चले गोप-जन
ग्वाल-बाल भी इठलाते ।
राधा ने देखे बाबा भी
अपनी बहली पर जाते ॥

टीस उठी अंतस्तल में—
बन गई व्यथा आगे बढ़ कर।
आह निकलती जाती थी
उन नयनों से मोती बन कर॥

卐

राधा हुईं अचेत तभी सब
करने लगीं सखी उपचार।
सावधान हो पाईं तो फिर
लगीं देखने नेत्र उघार॥

बोलीं—'सखी! आज मुझसे यों
मनमोहन मुख मोड़ गये।
आह! अभागी राधा के
कोमल अन्तर को तोड़ गये॥

पहुँचा रथ अब दूर, न मेरी
पार यहां कुछ बसियाये।
अरे, कहीं किससे जो, माधव
को लौटा कर ले आवे॥

बिना श्यामसुन्दर के लगता
सूना यह सारा संसार।
पार लगाये कौन इसे, यह—
जीवन-नैय्या है मझधार !!

अरे खिवैया ! चले गये तुम
कैसे इन नयनों की ओट ?
देख सकोगे किस प्रकार, जो
लगी हृदय पर भारी चोट ?

सदा नारि के जीवन से यह
पुरुष खेलते आये हैं।
सबल, सदा दुर्बल प्राणी को
ही धकेलते आये हैं।।'

कहा विसाखा ने तब—'सजनी !
साहस से ही होगा काम।
शीघ्र लौट कर ही आयेंगे
मथुरा से नटवर घनश्याम।।

चिन्ता में ही पड़ी रहोगी
मन में धैर्य न लाओगी।
तो अपने इस जीवन को तुम
कितने दिन रख पाओगी ?

बोलीं राधा—'सखी ! नहीं है
मुझको अब जीवन की चाह ।
साथ लेगये नंदनंदन—
मेरे मन का सारा उत्साह ॥

मेरी आंखों के सम्मुख ही
जाते थे मुझको त्यागे ।
इससे तो था उचित, लेट
जाती मैं उस रथ के आगे ॥

ले जाते रथ ऊपर से क्या
बन पाते ऐसे पाषाण ?
चूर-चूर यह तन हो जाता
तो प्रफुल्ल हो जाते प्राण ?

भाग्य कहां मेरा ऐसा जो
होती प्रियतम पर बलिदान ?
विरह-व्यथा से छुट जाती
मन में पाती संतोष महान ॥

सजनी ! अब तो रह रह कर
मन के अरमान मचलते हैं ।
इस जीवन के तत्त्व सभी,
अंतर्ज्वाला में जलते हैं ॥

कह सकता है क्या कोई
घनश्याम यहां कब आयेंगे ?
दग्ध हृदय पर अमृत की
दो बूंदें कब बरसायेंगे ?
यह तो है विश्वास कभी
दर्शन तो देंगे जीवन-धन।
किन्तु, विरह के यह दिन कैसे
काट सकेगा मेरा मन ?'
आशा और निराशा में—
सतप्त हुई वे इसी प्रकार।
बीत गये थे रोते हंसते
जब वियोग के वे दिन चार॥
आकर एक सखी यों बोली—
'आये लौट यहां पर नंद।
कहते हैं—मथुरा में अब तो
सभी ओर छाया आनन्द॥
कुबड़ी कुब्जा को माधव ने
कर दी है सुन्दर बाला।
आगे चल कर राजा के—
धोबी का भी वध कर डाला॥

मनमोहन ने वहां धनुष को
खेल-खेल में डाला तोड़ ।
मत्त कुवलयापीड़ उन्होंने
मार दिया था सूंड मरोड़ ॥

कंस जहां पर बैठा था, फिर
गये वहा दोनो भाई ।
मल्ल युद्ध में मार दिये सब
कंसराज के अनुयाई ॥

निज वीरों का मरण देखकर
कंस तभी बोला ललकार ।
नंद और वसुदेव तथा इन
दोनों को डालूंगा मार ॥

तभी उछल कर मनमोहन ने
राजा की ली छीन कृपाण ।
पकड़ शिखा धरनी पर डाला
निकल गये थे उसके प्राण ॥

हुए प्रसन्न सभी सुरगण, जो
नभ से वर्षाते थे फूल ।
जयजयकार मनाती, हंसती
प्रजा हुई उनके अनुकूल ॥

नाना को दे राज्य किया है
मातृ-पितृ को बंधन-मुक्त !
राजाज्ञा से स्वयं हुए हैं
मथुरा की रक्षार्थ नियुक्त ।।

नाना हैं अति वृद्ध, कृष्ण ही
शासन कार्य चलाते हैं ।।
राज्य नहीं करते हैं, पर वे
मथुरापति कहलाते हैं ।।

मिले सुखी हो बाबा से
वसुदेव मानते अति आभार ।
बोले—'मित्र ! नहीं भूलूंगा
कभी तुम्हारा मैं उपकार ।।

तुमने कितने लाड-चाव से
पाले यह दोनों बालक ।
मैं क्या हूँ, अब तो तुम ही हो
इनके पूज्य पिता-पालक ।।

तभी वहां पर आ पहुंचे
वसुदेव-पुत्र वे सुन्दरश्याम ।
चरण पकड़ कर बाबा के
गद्‌गद्‌ हो कर था किया प्रणाम ।।

बाबा से बोले मनमोहन—
'तात! लौट व्रज को जाओ।
आऊँगा मैं शीघ्र वहां, मत—
अपने मन में दुख पाओ॥

किंतु यशोदा को या तुमको
भेज न पाये कुछ संदेश।
नहीं समझ में आया, उनके—
यहां न आने का उद्देश॥

विदा हुए बलराम-श्याम से
नयनों में आंसू छाये।
मन को मथुरा में रख कर वे
केवल तन लेकर आये॥'

सुन कर यह श्रीराधा बैठीं—
शेष रही आशा भी त्याग।
कर प्रयत्न भी छुपा न पाईं
वे अपने अंतर की आग॥

बोलीं—'सजनो! कैसे जीवित
रक्खूं स्वप्नों का संसार?
अब तो यदुनंदन-मनमोहन
हम सब को ही चुके बिसार॥

कैसे रख पाऊं यह जीवन
मुझको समझा दे कोई ?
कब आयेंगे प्राणनाथ, यह
किंचित् मनलादे कोई ?

दोष किसे दें ! यह तो केवल
रहा हमारा ही दुर्भाग्य ।
आह ! हुआ जो इस प्रजवन मे
प्रियतम के मन में वैराग्य ॥

यहां नहीं आसकते थे तो
अपने पास बुला लेते ।
यह भी उचित नहीं था तो
दो शब्द मात्र कहला देते ॥

जान गई हूँ प्रियतम का
मुझ पर था सच्चा प्यार नहीं ।
थीं प्रपंच की ही सब बातें
जिनका कुछ आधार नहीं ॥

नहीं जानती थी, होता है
पुरुष-हृदय इतना पाषाण !
नहीं देखता—किसी अभागी
के जाते हैं उस पर प्राण ॥

निष्ठुर प्रियतम ! नहीं सुनोगे
क्या इस विरहिन की कुछ टेर ?
प्राण निकलने वाले हैं अब
करते हो किस कारण देर ?

समझाती थीं सखी, किन्तु कुछ
समाधान नहिं हो पाता।
प्रियतम की इस निष्ठुरता पर
राधा का मन रोजाता ॥

राधिका बोली—'सखी ! यह प्रेम है।
पथ में इसके 'न हसना' नेम है॥
वे मिटे जो चल दिये इस ओर को।
पा सके विरले मनुज ही छोर को॥
प्रेम-रस है पेय आकर्षक महा।
खेद में—जो पी सका, वंचित रहा॥
पी रहे मानव समझ पौष्टिक तरल।
पर मिटाता प्रेम रस बन कर गरल॥
देख सुन्दर रंग नर ललचा रहे।
जो न पीते आह ! वे पछता रहे।
पासके कुछ प्रेम में सम्मान भी।
खोगये कुछ नर प्रतिष्ठा, मान भी।

(पृष्ठ २०१)

कुछ हुए उन्मत्त तन कर ज्ञान भी।
होगये कुछ वीरवर बलिदान भी॥
प्रेम में यदि सत्य ही अनुराग है।
तो समझलो मार्ग इसका त्याग है॥
साधना है—योगियों को योग है।
वासना है—भोगियो को भोग है॥
प्रेम बनता रोगियों को रोग भी।
प्रेम का इच्छित रहा उपयोग भी॥
प्रेम पर जो मिट गया, वह तो गया।
किन्तु, जीवित भी स्वयं में खो गया॥
जल रहा, जो कर रहा है साधना।
देख पाये कौन अन्तर्वेदना?
प्रेम-मग पर जो उपासक चढ़ रहे।
भूल कर संताप सारा बढ़ रहे॥
कष्ट भी बढ़ते गये, पर, हैं अटल।
जा सके निर्दिष्ट पर, वे हैं सफल॥
फिर नहीं कुछ कष्ट रहता शेष है।
प्रेम का जब वे बसाते देश है॥
किन्तु, जिनकी व्यर्थ आह, उपासना।
बन गई आशा, समस्या कल्पना॥

जल रहे उद्गार अंतर्देश में ।
अखियाँ उनकी रही हैं गोप में ॥
आह ! यह कैसा अभागा प्रेम है ?
पंथमें इसके 'न हँसना' नेम है ॥

卐

आगई हेमन्त, मैं हूँ आकुला ।
देह को यह वायु कम्पाता चला ॥
प्रात की पौ फट चली है गाँव में ।
फट बिवाई भी गई है पाव में ॥

फट चली मेरी हथेली भी इधर ।
है जहां अद्भुत पड़ी रेखा-लहर ॥
और यह अंतर फटा अब क्या करूं ?
आह ! अब मैं धैर्य भी कैसे धरूं ?

होगये हैं म्लान पल्लव शीत से ।
पुष्प भी लगते सखी ! भयभीत से ॥
आगई ठिठुरन सभी में आज तो ।
मृतक-सा ही हो गया यह बाज तो ॥

और वह मृग-वत्स भी कम्पित खड़ा।
देख री! सोपान पर यह शुक पड़ा॥
किन्तु, पारावत झरोके पर चढ़ा।
लग रहा ज्यों सत्य के पथ पर बढ़ा॥
उड़ चली उसकी प्रिया भी खोजती।
आ रही ज्यों कंत से मिलने सती॥
काष्ठ-कोटर मिल रहा जो भीत में।
बैठ उसमें बच रहे यह शीत में॥
यह भयंकर शीत काल-समान है।
ले चला जो निर्बलों के प्राण है॥
शीत ने मैना वहां कम्पा रखी।
होगया स्वर-भंग कोयल* का सखी॥
मोर भी बेबस सिकुड़ता-सा पड़ा।
इस दशा में भी अभागा गा-पड़ा॥
देख! उस मृग की दशा क्या होरही!
पास में हरिणी खड़ी है रो रही॥
जारहा है वह अभागा छोड़ कर।
अंत में संसार से मुख मोड़ कर॥
वन चला हा! काल का वह ग्रास है।
वेदना ही अब मृगी के पास है॥

आह! यह केवल तड़पना प्रेम है।
पंथ में इसके 'न हँसना' नेम है॥

卐

प्रेम-सरि में जो प्रवाहित हो चला।
पा किनारा भी रुके वह क्यों भला?
है चतुर पैराक, बल-साहस अथक।
क्यों न जाये वह चला निर्दिष्ट तक?

पा सका तो जगत से फिर नेह क्या?
कामना की पूर्ति में संदेह क्या?
जब बसे संसार ही उसका पृथक।
व्यर्थ हो जाता उसे सुर-लोक तक॥

जो नहीं निर्दिष्ट तक भी जा सका।
प्रेम-सरि का कूल भी नहिं पा सका॥
तो उसे इस देह से भी नेह क्या?
मृत्यु में उसको भला संदेह क्या?

प्रेम की सोपान पर जो चढ़ चला।
गाँठ का सब कर निछावर बढ़ चला॥

पास मे कुछ भी नहीं संबल रहा।
हाथ पर अंगार लेकर चल रहा॥

दग्ध भी होजाय तो चिन्ता कहां?
मृत्यु से भय ही किसे लगता यहां?
चाह जीवन की नहीं जब शेष है।
कामना सुख की हुई निःशेष है॥
कल्पना-सी बन गई प्रिय का मिलन।
पर हुई जिसको सुखद अंतर्जलन॥
जगत की सम्पत्ति जिसकी खोगई।
याद ही जिसकी धरोहर होगई॥

प्रेम पर मिटना गया है सीख जो।
मांगता है प्रेम की ही भीख जो॥
देखता जो स्वप्न-स्वर्णिम सो गया।
खोजने निकला, स्वयं ही खो गया॥
रोकने पर भी रुका है जो नहीं।
चाहने पर भी झुका है जो नहीं॥
व्यर्थ गुरुजन का जहा क्रन्दन रहा।
बंधुजन का भी नहीं बंधन रहा॥

आह ! ममता मिट गई, बस प्रेम है ।
पथ में इसके 'न हँसना' नेम है ॥

卐

गूंजते उच्छ्वास केवल आह से ।
जल गये हैं अश्रु अन्तर्दाह से ॥
किन्तु, अन्तर्दाह ही सुख-साध्य है ।
होरहा मिलना कठिन आराध्य है ॥
दाह में ही रम गया प्रेमी जहां ।
चाहना आराध्य की भी फिर कहां ?
वह नहीं मिलता, मिटा जिसके लिये ।
दाह ही आराध्य फिर उसके लिये ॥

त्याग में संसार-त्याग महान है ।
दान में अति श्रेष्ठ आत्म-दान है ॥
भेंट में भी शीश का बलिदान है ।
प्रेम कैसा, जब लगा प्रिय प्रान है ?
वीर मानव क्या नहीं हैं कर सके ?
धन्य वे जो प्रेम पर हैं मर सके ॥

है न उतना योग, वंदन, ध्यान ही।
श्रेष्ठ जितना प्रेम पर बलिदान ही

तप रहा जो प्रेम की ही आग में।
वह खरा उतरा सदा अनुराग में॥
किन्तु उसको भूत पाया कौन है?
वेदना को देखता जग मौन है॥

बीज बोकर प्रेम का प्रेमी जभी।
सोचता है—तरु बड़ा होगा कभी।
कर खड़ा पौधा दिया विश्वास से।
सींचता है हा! उसे उच्छ्वास से॥

हो चला तरु, पर नहीं पल्लव उगे।
पुष्प भी जिस पर नहीं अब तक लगे॥
तो भला फल की रही आशा कहां?
फिर गिरा उद्वेल से तरु ही वहां॥

बन चली, उद्वेल, उर की हूक थी।
हो चली जब वेदना भी मूक थी॥
किन्तु प्रेमी उस कसक को सह गया।
आह भी जब हो न, तो क्या रह गया?

बस तड़पना या सिसकना प्रेम है ।
पंथ में इसके 'न हँसना' नेम है ॥

घनश्याम सुनोगे टेर कभी ?
अब जीवन व्यर्थ हुआ जाता,
मन में नहिं धीरज आ पाता,
इच्छाएँ होती भस्म चली,
आशाएँ बनतीं ढेर सभी ।
घनश्याम सुनोगे टेर कभी ?

दशम सर्ग

जब शुष्क पीत हो टूटी
किसलय पृथ्वी पर छाईं।
हो चले सभी वन फीके
पतझड़ की ऋतु जब आई॥

झड़ गये पुष्प वृक्षों से
थे फल भी नहीं दिखाते।
वन-पथ भी बीहड़ बन कर
अतिशय उदास से पाते॥

नभ पर जब काले बादल
घनघोर कभी छा जाते ।
वे कभी घोर गर्जन कर
जगती पर उपल गिराते ॥

उनके ही सँग में गिरती
शीतल मुक्तावलि भू पर ।
चलती थी वायु कभी जब
प्राणी का अन्तर छूकर ॥

तब जग में सब जड़ चेतन
अति कंपित थे दिखलाते ।
ऋतु कोप अभी बढ़ जाता
भय-त्रस्त सभी होजाते ॥

अति श्वेत, बिंब-से, छोटे
गिरते जो उपल गगन से ।
सिहरन का उद्भव करते
लग कर प्राणी के तन से ॥

कृषि को भी हानि पहुचती
है उपज नष्ट हो जाती ।
अंकुर, पौधे सब मिटते
भू बजर-सी दिखलाती ॥

पशु-धन का ह्रास न कम था
पक्षी भी क्या बच पाते ?
जब अधिक शीत के कारण
निर्बल नर तन-तज जाते ।।

जब रात्रि कालिमा लाती
तब घोर शीत पड़ता था ।
मानव निज निर्मित गृह में
भय-मुक्त शयन करता था ।।

जो धनिक व्यक्ति होते हैं
आनन्द उन्हें मिलता है ।
पर, निर्धन को यह जाड़ा
दुख देता है, खलता है ।।

वह सिहर-सिहर जाता है
तब सिकुड़-सिकुड़ कर सोता ।
जब ठिठुरन बढ़ जाती है
प्राणों मे कम्पन होता ।।

निर्धन की जीर्ण कुटी में
देखे दरिद्रता कोई ।
कंकाल बना नर-तन है
मानवता ही ज्यों खोई ।।

बच सकें शीत-संकट से
यह साधन यहां कहां है ?
इस ध्वस्त झोंपड़ी में तो
क्रन्दन का राज्य रहा है ।।

है वस्त्र न तन ढकने को
आसन को टाट नहीं है ।
यह मानवता ही कैसी
जब टूटी खाट नहीं है ?

भरपेट नहीं भोजन है
श्रम करते अधिक अभागे ।
रोगी की नहीं चिकित्सा
जाते हैं तन को त्यागे ॥

मानव का मूल्य नहीं कुछ
बिछुड़न का घाव न होता ।
ऊपर से हँस, अंतर में
वह सिसक-सिसक कर रोता ।।

संतोष सदा कर लेता
पीकर आंसू का प्याला ।
इस उजड़ी मानवता का
कैसा है रंग निराला ।।

है इधर धनिक मानव के
अद्भुत से ठाठ निराले।
वह पीकर मत्त हुआ है
सौन्दर्य, सुरा के प्याले॥

वह जितना शोषण करता
दानी ही बनता जाता।
धनवान करे जो कुछ भी
बस वही न्याय कहलाता॥

भय नहीं प्रकृति, ईश्वर से
उसको तो कभी लगा है।
केवल कोमल वस्त्रों में
उसका सब शीत भगा है॥

卐

थी चिन्ता नहीं प्रिया को
अपने शरीर की किंचित।
वे शीत-काल में, वन में
करतीं अतीत को संचित॥

यह महारास की लीला
वेणी गुन्थन की क्रीड़ा।
जब याद इन्हें आती थी
उठती थी अतर-पीड़ा॥

जब स्मृति-पट पर—यमुना में
बहती मृडाल दिखलाती।
तब गूँज उठी कानो में
वशी की ध्वनि मदमाती॥

वह ही था कूल, जहा पर
बैठीं राधा मन मारे।
थीं अस्त-व्यस्त व्याकुल सी
प्रियतम की याद सवारे॥

वे सोच रहीं—'कब, कैसे
मिलना प्रियतम से होगा?
या यो ही विरह-व्यथा में
जलना आजीवन होगा?

यह निष्ठुरता प्रियतम की
बन गई हृदय की ज्वाला।
जिससे जल-जल कर मन पर
छाया विषाद था काला॥

सखियां उनको समझातीं
पर समझ नहीं वे पातीं।
नटवर की याद सताती
तब आंखें भर-भर आतीं॥

झरती मुक्तावलि उनसे
प्राणों में तड़पन होती।
जीवन में राग नहीं था
वे रोतीं, धीरज खोतीं॥

खो चला शीत बल अपना,
चुपके से एक सवेरे।
आकर वसंत मदमाता
था डाल रहा निज डेरे॥

दो मास बसेरा करके
संबल अपना ले जाती।
यह देख न पाया कोई—
कब गई शिशिर सकुचाती?

卐

बीत रहे थे दिन यों ही, थी
विरह-व्यथा बढ़ती जाती।
उठता था तूफान हृदय में
उसमें वे उड़तीं जातीं॥

बैठी रहतीं बहुत समय तक
यमुना-कूल कछारों में।
कभी-कभी जाकर छुप जातीं
ऊंचे-नीचे गारों में॥

करतीं याद कभी वे बैठी
रहती थीं निर्जन वन में।
आठो प्रहर बिता देती थीं
कभी कभी वे उपवन में॥

हुआ एक दिन यही—छारहा
था मन पर भारी उन्माद।
करने लगीं अबोध प्राणियों
पर भी मन का व्यक्त विषाद॥

विरह—गीत

यशुमति के नयनो के तारे
नंदनँदन घनश्याम कहां ?
इस विरहिन के जीवन-साथी
मेरे प्रियतम-प्राण कहां ?

छेड़ रही हैं हाय ! भावना
पी-पी कर मधु की प्याली ।
वे अतीत की मधुर तरंगें
बना रही हैं मतवाली ॥

मीठी याद कभी बन जाती
मन की पीड़ा का साधन ।
कभी रुलाती और हसाती
कभी कराती आराधन ॥

सूखी आंखें भी रोती हैं,
जब विरहाग्नि जलाती है ।
गीली आंखें हंसती हैं, जब
प्रिय की याद सताती है ॥

अल्प समय को सुख पाकर क्या
करता है मानव दुख-भोग ?
आह ! बिछुड़ने को ही क्या, घन
पाया था ऐसा संयोग ?
अहो विधाता ! तुमको भी क्या
अपना खेल दिखाना था ?
जो बिगाड़ना ही था हमको
तो किस लिये बनाना था ?
सुख प्रसन्नता में मानव के
बढ़ जाता शरीर का मेद ।
घुन लग जाता चिंता का तो
अंतर में होजाते छेद ।।
आह ! सुनेगा कौन आज—
जीवन की करुण-कहानी को ?
कह पाया अन्याय कौन—
नटवर की इस मनमानी को ?
कब होगी वह मिलन-रैन ?
यह कोई नहीं बता पाया।
जान नही पाती हूँ मैं यह—
किसने उनको भरमाया ?

अरे वत्स ! तू ही बतलादे
गोपालक घनश्याम कहा ?
नयन खोजते जिन्हें सदा वे
मेरे प्रियतम-प्राण ! कहा ?

आह ! क्रूर अक्रूर सग
जीवन-धन जहां पधारे हैं।
वहां न जाकर अरे ! यहां क्यो
अटके प्राण हमारे हैं ?

आज न यह उपवन भाता है
व्यर्थ हुआ ससार सभी।
मिलते थे हम यहां सखी !
प्रियतम से भुजा पसार कभी॥

किंतु आज सब ओर हुई यह
मूक-व्यथा देखो साकार।
आह ! लुटाये बैठी कोयल
डाली पर अपना संसार॥

बोल उठी कुछ व्यथा लिये, कुछ
अंतस्तल की कूक लिये।
आज अभागी रोती है उस
टूटे दिल की हूक लिये॥

कोयल तेरी कुहुक नहीं यह
करुणा का ही है क्रन्दन।
सिसक-सिसक कर हाय! निराशा
का देती संदेश गहन॥
कसक उठी आकुल अंतर में
मिटीं सभी वे मृदुल उमंग।
बिता रही यह संध्या सजनी।
तू भी तो विषाद के संग॥
तुझे याद आता है क्या अब
उस अतीत का विस्मृत प्यार।
आह! स्वरों में टपक रही है
तेरे मन की व्यथा अपार॥
छोड़ गया है क्या तुझको भी
तेरा निर्दय जीवन-धन?
नष्ट कर गया हरा-भरा यह
तेरी आशा का उपवन?
वही व्यथा है मुझे सखी!
मेरे प्रियतम सुखधाम कहां?
नहीं जानती नटवरनागर
मेरे प्रियतम-प्राण कहां?

नव विकसित कलियों को देखो
जगा आज इनका संसार।
चुन चुन कर लेलेगा कोई
, जो गूंथेगा सुन्दर हार।
किसी भाग्यशाली को वर कर
जीवन सुफल बनायेंगी।
हस हंस कर यह मतवाली, मृदु
सौरभ आज लुटायेंगी॥
रे, रे! भ्रमर! यहां क्यों आया
तू तो अति अन्यायी है?
तेरी नीति असंगत यह—
प्रेमी-जन को दुखदायी है॥
स्वार्थ भरी है गूंज भ्रमर! यह
स्वर तेरा मतवाला है।
ऊपर से, अन्तर से भी तू
तो काला ही काला है॥
लेकर हृदय कठोर अरे! यों
घूम रहा है तू निर्भय!
एक कली का रस लेकर तू
उसे त्याग देता निर्दय॥

निर्ममता को त्याग अरे ! क्यों
नहीं बनाता हृदय उदार ?
लूट रहा क्यों हाय, अभागे !
भोली कलियों का शृंगार ?
मूक हृदय की आह निकल कर
कहीं न हो जाये साकार।
भस्मीभूत करेगी वरना
वह तेरा निर्दय संसार ॥
आह ! भ्रँवर से मतवाले नर
भी देते अनेक विश्वास।
किन्तु, अन्त में क्या ये सब ही
करते हैं ऐसा उपहास ?
अरे ! नहीं मैं जान सकी यह
इतना मुझको ज्ञान कहां ?
व्यर्थ होरहा है यह जीवन
मेरे प्रियतम—प्राण कहां ?
आह ! हुई मरु आज धरा
सुख-वैभव की कुछ बात नहीं।
उधर पपीहा रोता है या—
गाता है, यह ज्ञात नहीं ॥

यह भी रहा कराह अभागा
कहां गया, इसका उल्लास ?
भूल गया क्या यह मतवाला
अपना वह सुख पूर्ण विलास ?
अरे ! हुआ क्या तुझे, भरा—
तेरे स्वर में क्यों यह कंपन ?
मन की ग्रन्थी खोल लुटाता
क्यों इन नयनो का जीवन ?
शुष्क हृदय में अरे, अभागे !
राग नहीं रह पाता है।
अन्तर्दाह जीव के तन को
भस्मीभूत बनाता है ॥
उर-तन्त्री के तार भग्न—
उन्माद कहां से लायेंगे ?
अंतर के वे भाव यहां, अब
गीत सुनाने आयेंगे ?
धधक उठा तेरे उर में भी
विरह-व्यथा का क्या अङ्गार ?
आह ! वेदना लिये कौन-सी
सुना रहा जो गीत असार ?

दुखी हृदय की ठेस लिये, कुछ
शांति नहीं मन में पाता।
किस अतीत की याद लिये तू
सिर धुन-धुन कर रह जाता ?
अरे ! नहीं है वह सुगंध, इस
उपवन के भी फूलों में।
नहीं रम्यता रही, सरोवर—
के सुन्दर उपकूलों में॥
कह दो कोई, नटवरनागर
जीवन-धन घनश्याम कहां ?
इस अभागिनी राधा के, सुख-
साथी प्रियतम-प्राण कहां ?
देखो ! संध्या बीत गई, तम
की छाई काली चादर।
उसे हटाने दौड़ पड़े सब
तेज-पुञ्ज योद्धा स्राकर॥
अभी-अभी नभ-मंडल में—
तारा-गण करने लगे विहार।
शुभ्र तारिकाएँ हँसती हैं
चीर-चीर कर अंधकार॥

इसी प्रकार चद्रमा भी अति
तेजस्वी बन कर आया।
उसका वह उज्ज्वल प्रकाश, इस
सुन्दर जगती पर छाया॥
प्रियतम! देखो, खिली कौमुदी
अर्द्धरात्रि है बीत गई।
वक्र चद्रमा हसता है ज्यों
उसकी भारी जीत हुई॥
लगता है—कहता हो जैसे
विरहिन क्यों मदमत्त हुई?
भूल गये नटवरनागर, पर
तू उन पर अनुरक्त हुई॥
राज-काज में व्यस्त हुए वे
तेरी अब क्या सुधि लेंगे?
धन्य हुईं मथुरा की वनिता
जिनमें वे अटके होंगे॥
एक रात वह भी थी प्रियतम!
जब तुम साथ हमारे थे।
छिप जाते जो खिसियाने-से
यही चंद्रमा, तारे थे॥

हे जीवन-धन ! बड़ी प्रशंसा
तुम तो करते थे मेरी।
कहते पूर्ण चंद्र भी फीका
रूप-छटा उज्ज्वल तेरी॥

आह! प्रासक्त राधा के वह
नंदनंदन घनश्याम कहाँ ?
इस विरहिन के जीवन-साथी
मेरे प्रियतम-प्राण कहां ?

अरे, मयूर ! यहां क्यों आया
क्या संदेशा लाया है ?
क्या अभागिनी राधा के—
प्रियतम ने कुछ कहलाया है ?

लगा नाचने अरे, अभागे !
क्यों दुराव दिखलाता है ?
मुझे अकेली जान रहा है
इसीलिये बल खाता है ?

अरे ! कभी तो प्रियतम प्यारे
लौट यहां पर आयेंगे।
तेरी इस निर्दयता को सुन
अति क्रोधित हो जायेंगे॥

अरे दुष्ट ! तू देख इधर
मृग-शावक द्रुततर आता है।
निश्चय ही नटवर नागर का
वह संदेशा लाता है ॥
आओ, प्रिय मृगराज ! कहो—
जीवन-धन सुखी हमारे हैं ?
क्या कह कर भेजा है तुमको
क्यों हम दीन विसारे हैं ?
क्यों त्यागा है मुझ विरहिन को
यह कुछ तुम्हें बताया है ?
क्या अपराध किया था मैंने
जिसका यह फल पाया है ?
क्या उनको विरहिन राधा का
ध्यान कभी कुछ आता है ?
मेरा नाम कभी कोई, उन—
के मुख से सुन पाता है ?
शुक्ल-पक्ष की रैन उजेरी,
नटवर कहां बिताते हैं ?
अपनी वह मनमोहक मुरली
किसके लिये सुनाते हैं ?-

इस अभागिनी के प्रिय-साथी
नंदनँदन घनश्याम कहां ?
अरे, बता वह मनमोहन
राधा के जीवन-प्राण कहां ?

अरे-अरे ! क्यों चला इधर—
मदमाता-सा बलखाता-सा ?
भोली अबला देख पड़ी तो
जाता है इठलाता-सा ॥

आह ! प्राणवल्लभ ! देखो, पशु—
पक्षी सभी चिढ़ाते हैं।
राधा को असहाय जान कर
यह भी हंसी उड़ाते हैं ॥

एक तुम्हारे ही वियोग में
शांति नहीं मिल पाती है।
दूजे जग की हंसी देखकर
धधक रही यह छाती है ॥

अरे कीर ! तू ही बतला—
मथुरा से चल कर आया है।
मथुरा-पति ने इस राधा को
भी क्या कुछ कहलाया है ?

कार्य पूर्ण हो चुका सभी—
ब्रजराज यहां कब आयेंगे ?
मातृ देवकी के संग रह कर
कब तक समय बितायेंगे ?
क्या अभागिनी राधा की भी
याद कभी वे करते हैं ?
क्या वियोग में ऐसे ही
उनके भी आँसू झरते हैं ?
या वे भूले रमण-रेतिया
नंदराय के आंगन को ?
सुख, सम्पति, ऐश्वर्य प्राप्त कर
भूल गये इस ब्रज-वन को ?
इस आशा ही आशा में, नहिं
निकले प्राण हमारे हैं।
पथ पर बिछे हुए यह नयना
अब तक धीरज धारे हैं॥
वे हैं मेरे जीवन-साथी
उनके बिन विश्राम कहां ?
अरे ! बता यह नटवरनागर
मेरे प्रियतम प्राण कहां ?

अरे! प्राणवल्लभ कब आकर
इस राधा की सुधि लेंगे ?
शांति नहीं है मेरे मन को
कब आकर दर्शन देंगे ?
बैठ गया है मौन यहां क्यों
अरे, नहीं कुछ कह पाता ?
क्या संदेश दिया प्रियतम ने
मुझे नहीं कुछ बतलाता ?
यही जान पड़ता है तू भी
मुझे चिढ़ाने आया है।
जान-बूझ कर नहीं सुनाता
जो संदेशा लाया है॥
अरे, अरे! ओ कीर अभागे!
तू भी क्यों मुख मोड़ चला ?
लगता है—राधा से जैसे
जग ही नाता तोड़ चला॥
एक नंदनन्दन के बिन ही
आज न कोई अपना है।
वे अतीत की सारी बातें
मिथ्यावत् ज्यों सपना है॥

देखो ! यह गोवत्स यहां पर
खड़े मौन-से विस्मृत-से ।
प्रियतम के चिंतन में रहते
यह भी ऐसे चिंतित-से ॥
वृत्त हुए निस्तब्ध न कोई
शब्द यहां सुन पाता है ।
मानों मोहन के वियोग में
इन्हें नहीं कुछ भाता है ॥
कहां गया वह मंद पवन, मन
को प्रफुल्ल करने वाला ?
जाकर मेरे प्राणनाथ को
क्यो न बनाता मतवाला ?

कह दो, कोई भी मुझ से, वह
जीवन-धन सुख-धाम कहाँ ?
मुझे बता दो, नटवरनागर
मेरे प्रियतम-प्राण कहां ?

मेघ छागया है नभ पर अब
चमत्कार यह दिखलाया ।
क्या तू मेरे प्राण-पिया का
संदेशा लेकर आया ?

किन्तु, अरे, मैं भूल रही हूँ
उत्तर से यह आता है।
लगता है ज्यों प्रियतम की
मथुरा नगरी को जाता है ॥
कहो, मेघ! मेरी कुछ बातें
मथुरा-पति से कह दोगे?
मानूंगी आभार तुम्हारा
जग में बहुत सुयश लोगे ॥
कहना यह संदेश—'प्राणपति!
राधा दुखी तुम्हारी है।
रोती है दिन रात उसे बस
विरह व्यथा ही भारी है।
आह! प्राणवल्लभ! देखो तो
मुझको सभी चिढाते हैं।
दुख त्राता प्रभु! आप न जानें
यहां क्यों नहीं आते हैं?
शीतल, मंद समीर चली ज्यों
काम देव ने शर ताना।
बिंधती है यह देह हमारी
प्रियतम! शीघ्र चले आना ॥

आह ! सुगंध वायु में मिलकर
रोम-कूप में घुस जाती ।
छेड़ रही है अंग-अंग को
बना रही जो मदमाती ॥
मैना बोल उठी इतने में
तव प्रियतम का प्यार जगा ।
नाथ ! तुम्हारे बिना आज तो
यह जीवन भी भार लगा ॥
मेघराज ! यह मन चिंतित है
जाओ, प्रिय घनश्याम जहाँ ।
शीघ्र यहां पर आकर कह दो
मेरे प्रियतम-प्राण कहां ?
कहना—प्राण-पिया बिन कोई
रही कभी क्या नारी है ?
फिर तुमने किस कारण अपनी
राधा नाथ ! बिसारी है ?
बिना चंद्रिका, चद्र नहीं जब
रह पाता है जीवन-धन !
तो तुम कैसे राधा के बिन
रह पाते हो मनमोहन ?

तीखी चली समीर प्राण-धन !
पुलक उठा यह तन मेरा ।
चिड़ियों का मन्माता कलरव
छीन लेगया मन मेरा ॥

आह ! कलपती इस राधा का
उनको है कुछ ध्यान कहां ?
मुझे लौट कर शीघ्र बता दो
मेरे प्रियतम-प्राण कहां ?

कहना उनसे मेघराज !—प्रभु !
जीवन का उत्कर्ष यही ।
ध्यान तुम्हारा टूट न पाये
प्रेमी का है हर्ष यही ॥

चाहे करे उपेक्षा वह—
जिससे है प्रेम किया जाता ।
मान और अपमान सभी—
सह लेता प्रेमी मदमाता ॥

अरे, उसे अपनेपन का भी
होता तनिक गुमान नहीं ।
आह ! प्रेम के मद में उसको
रहता है कुछ ध्यान नहीं ॥

मेघ! करोगे कार्य, यही—
विश्वास जमाये बैठी हूँ।
अब तो तुम पर आशा को
अक्षुण्ण बनाये बैठी हूँ॥
तुम आने से पूर्व, मेघ!—
दे दोगे मुझको आश्वासन।
तो ही कुछ दिन मिलन आश में
रख पाऊँगी यह जीवन॥
यह शीतल सुकुमार बिन्दु—
तुमने बरसाईं मेघराज!
मन मेरा आश्वस्त हुआ—
निश्चय कर दोगे पूर्ण काज॥
जाते हो प्रिय बंधु! यहा से
किन्तु मुझे मत बिसराना।
नटवरनागर पर मेरा—
सदेश शीघ्र ही पहुचाना॥
देखो जाकर राधा के मन-
मोहन सुन्दरश्याम कहा?
मुझे लौट कर शीघ्र बता दो
मेरे प्रियतम-प्राण कहा?

खुली घटा, अब गया मेघ, यह
स्वच्छ सभी आकाश हुआ।
होगा मेरा कार्य सिद्ध—
ऐसा मुझको आभास हुआ।।'

किन्तु, इसी आशा में बीते
श्रीराधा के दिवस अनेक।
चिन्तातुर-सी ध्यान-मग्न थीं
खोकर अपना धैर्य विवेक।।

सोचा—'बीते दिवस, न कुछ भी
समाचार उनका पाया।
स्वयं न आये जीवन-धन
नहिं कुछ संदेशा ही आया।।

सुनते—एक नवोढा से—
नटवर ने प्रीति लगाई है।
किन्तु मुझे इन बातो पर, अब
भी प्रतीति नहिं आई है।।

किया किसी से नेह, मुझे—
इसकी लग पाती थाह नहीं।
क्या उनको अब राधा की सुधि
लेने की भी चाह नहीं।।

निश्छल, या निस्वार्थ प्रेम—
करना ही उसका काम रहा।
सुख-दुख जो उपलब्ध हुआ
हो कर प्रसन्न वह सभी सहा॥
कहो श्यामसुन्दर ! प्रेमी क्या
करतब से रह पाता है ?
प्राण जांय तो जांय, किन्तु
करता अपना मन भाता है॥
सदा हथेली पर प्रेमी तो
प्राण लिये ही रहते हैं।
प्रेम सदा बलिदान मांगता
देने वाले देते हैं॥
दीप-शिखा पर पहुंच पतंगा
भस्म तुरत होजाता है॥
किन्तु कभी भी नहीं दीप पर
जाने से रुक पाता है॥
सत्य लगन जब होती है, तब
मनचाहा होता भी है।
कार्य न पूरा होने पर, नर
हँसता है रोता भी है॥

कभी रुदन का ध्यान अरे, कुछ
करते हैं पाषाण कहां ?
मुझे बताओ ! नटवरनागर
मेरे प्रियतम–प्राण कहां ?

कहना उनसे—प्राणनाथ ! है
अब विलम्ब का काम नहीं ।
राधा का भी क्या होगा जब
उसका है घनश्याम नहीं ॥
बिना आपके राधा का, जग
में कोई आधार नहीं ।
कुछ विलम्ब मे टूट न जाये
इस जीवन का तार कहीं ॥
विरह-व्यथा की पीड़ा को—
कैसे समझोगे जीवन–धन ?
आकर देखो राधा के—
नयनों की भाषा का क्रन्दन ॥
अतस्तल को चीर देख लो
मचा हुआ है हा-हा-कार ।
कैसे धीरज रखूं हृदय मे
लुटा आह ! स्वर्णिम ससार ॥

बिना प्राणवल्लभ के मुझको
कुछ भी नहीं सुहाता है।
एक-एक क्षण वर्ष बना है
आह! नहीं कट पाता है॥
अरे कपोत! प्रशंसित तेरी
दूत-कार्य में निपुणाई।
क्या कुछ मेरे कार्य-हेतु तू
दिखलायेगा चतुराई?
सभी दशा मेरी प्रियतम को
शाकुनेय! अब कह आना।
कैसे भी मथुरापति को तुम
जाकर बंधु! मना लाना॥
जा प्रिय भाई बसते हैं
राधा के सुन्दरश्याम जहाँ।
अंतस्तल में हूक उठी है
मेरे प्रियतम-प्राण कहाँ?
नहीं जानता कोई भी यह
पीर पराई क्या होती?
कौन देखता—बिना श्याम के
यह राधा मन में रोती?

सत्य बतादे कोई—क्या नहिं
आयेंगे धन-रत्न कभी ?
नहीं निकलते प्राण अभागे
व्यर्थ हुए हैं यत्न सभी ॥

घनश्याम ! सुनोगे मेरी ?
मैं नाथ ! तुम्हारी चेरी ॥

प्रभु दर्शन की है अभिलाषा,
केवल पास रही है आशा।
डूब गया वह दिन उजला सा,

है सब ओर अँधेरी।
घनश्याम ! सुनोगे मेरी ?

मोहन ! क्या है मन में ठानी ?
सुख की इच्छा बनी कहानी
गहन नदी है नाव पुरानी,

झंझा ने भी घेरी।
घनश्याम ! सुनोगे मेरी ?

नौका में पानी भरता है,
व्याकुल मन क्रंदन करता है.
कूल नहीं मुझको मिलता है,

थकी और चहुँ हेरी।
घनश्याम सुनोगे मेरी ?

निकट नहीं, कोई भी पाता,
जो मुझको प्रभु! पार लगाता.
शेष नहीं कुछ जग से नाता,

नाथ! करो क्यों देरी ?
घनश्याम सुनोगे मेरी ?

एकादश सर्ग

गई राधिका भूल स्वयं को
चिंताएँ कर रहीं अनेक ।
साथ लिये उद्धव को अपने
आई तब ब्रज-बाला एक ।।
बोली—'देखो इधर सखी ! यह
तुमसे मिलने आये हैं ।
कहते हैं—मथुरापति का कुछ
समाचार भी लाये हैं ।।

बोले उद्धव—'रासेश्वरि !
मथुरा नगरी से आया हूँ।
सुख-सागर नटवरनागर का
कुछ संदेशा लाया हूँ॥
शांत रहो यह व्यथा त्याग कर
साहस को तुम मत हारो।
ममता-माया को तज कर, इस
सुन्दर काया को धारो॥'
बोलीं राधा—'धन्य भाग्य!—
मेरी कुछ याद उन्हें आई।
क्या अपराध बना है मुझसे
जान नहीं कुछ भी पाई॥
मथुरापति के सखा! बताओ
कहां रहे करुणा-सागर ?
सुख से तो है मेरे प्रियतम
जीवन-धन नटवरनागर ?
उद्धव ! शीघ्र कहो मुझसे वे
नंदनंदन घनश्याम कहाँ ?
इस अभागिनी के सुख-साथी
मेरे प्रियतम-प्राण कहां ?

भँवर—गीत

उद्धव ! क्यो तुम मौन खड़े—
किसलिये यहां पर आये हो ?
मथुरा मे नटवरनागर का
क्या सदेशा लाये हो ?

अरे, अरे ! वह भँवर आ गया
देखो, साथ तुम्हारे है ।
भीतर से है कुटिल किंतु कुछ
ह्रदयेश-सा धारे है ॥

प्रियतम के हो सखा भ्रवर !—
उनके ही क्या गुण गाते हो ?
कब आयेंगे इस व्रज वन मे
यह क्यों नहीं बताते हो ?

तुम भी काले, वह भी काले
काले ही पहले आये ।
ऊपर, अतर से जो काले
उनसे पार न बसियैंहि ॥

एक कली का रस लेकर फिर
त्याग उसे तुम देते हो।
भ्रँवर! कहो क्या यह शिक्षा भी
उसी सखा से लेते हो?
आये हो नवीन बनकर, पर
सब के देखे-भाले हो।
हे षट्पद! तुम चतुष्पदों के
पशु से भी मतवाले हो॥
क्यों प्रियतम के सखा भ्रँवर! सब
बुद्धि यहाँ व्यय करते हो?
अपना यह उपदेश भला, क्यों
नहीं गाँठ में रखते हो?
समय पड़े पर निश्चय ही यह
सभी काम में आयेगा।
मदमाती नव-नारी पर—
इसका जादू चल जायेगा॥
अरे भ्रँवर! हमको तो इतना
ही बतलादो श्याम कहाँ?
नयन खोजते जिन्हें सदा वे
मेरे प्रियतम-प्राण कहाँ?

मधु के लोभी भंवर ! दूत-बन
सीख सखा से आया है।
जान रही हूँ चाल सभी, तू
मुझे भ्रमाने आया है ॥
तेरे उस गुणवान सखा की
सुनली सभी बड़ाई है।
कुबड़ी कुब्जा को सीधी कर
उससे प्रीति लगाई है ॥
कंसराज की वह दासी अब
अति सुन्दर दिखलाती है।
यौवन में मदमस्त नवेली
उनके मन को भाती है ॥
सीख नहीं देता है उनको
पर-नारी पर हैं अनुरक्त ?
कुब्जा को उपदेश सुना कर
अरे ! बनाता नहीं विरक्त ?
बता भंवर ! अब यहां कौन-सा
जाल बिछाने आया है ?
वह तो करते भोग, हमें तू
योग सिखाने आया है ?

अरे ! नहीं तू बता सका—
उनको पर-नारी की महिमा।
हमको बता रहा है लेकिन
योग और उसकी गरिमा॥

पर-नारी ने कितने ही घर
कर डाले समूल विध्वंस।
अरे ! हुई हैं पर-नारी पर
कितनी हत्यायें नृशंस॥

पर तिय को धन, यौवन देकर
प्रेम न उसका पाते हैं।
फिर भी पर-नारी पर ही नर
अपना हृदय लुटाते हैं॥

अरे भ्रमर ! क्यों नहीं वहां
जाता, हैं सुन्दरश्याम जहां ?
मुझे बतादे आकर कोई
मेरे प्रियतम-प्राण कहां ?

कुब्जा गुण की खान, भ्रमा—
रक्खे हैं जिसने नंदनँदन।
छीन लिया है अब तो उसने
आह ! हमारा जीवन-धन॥

कहो भ्रंवर ! पर-पुरुष संग
जो नारी प्रीति बढ़ाती है।
इस समाज में रह कर क्या
आदर्शवान कहलाती है ?
यह विलास बलिवेदी है—
पर-पुरुष आग का अंगारा।
जला बैठती निज सतीत्व का
उसमें वह वैभव सारा॥
नारी के कर्त्तव्य अरे! तुम
नहीं उसे समझाते हो ?
अपनी वह चतुराई क्यों—
कुब्जा पर नहीं चलाते हो ?
जान रहे हो तुम भी तो यह
व्यर्थ वहां होगा उपदेश।
कली-कली को हाय ! मिटा कर
सुना रहे हो यह संदेश ?
सदा घूमते मधु के पीछे
आज बने तुम शीलवंत।
लेकर योग हमारे गृह पर
धन्य ! पधारे ऐसे संत !!

अर्घ्य-दान कर पूजें इनको
आज हुए हम बड़ भागी।
उदय हो गये पूर्व पुण्य, जो
आये हैं ऐसे त्यागी॥
अरे भ्रमर! इस सत्य-कथन का
लगा न लेना उलटा अर्थ।
क्योंकि हृदय के भाव व्यक्त
करने में नहिं होसकी समर्थ॥
शीघ्र बताओ, कब आयेंगे
नंदनँदन घनश्याम यहाँ ?
नयन खोजते जिन्हें सदा वे
मेरे प्रियतम-प्राण कहा ?
अरे भ्रंवर! निष्ठुरता को तज
नयन खोल कर देख इधर।
मेरा तन इस विरह-व्यथा में
आह! हुआ कैसा जर्जर॥
टूट रहा यह हृदय, नहीं हैं
आये अब तक नंदनँदन।
किन्तु, सजाये बैठी हूँ मैं
अपनी आशा का उपवन॥

कहते थे यह-कार्य पूर्णकर
शीघ्र यहां पर आऊँगा।
अपनी राधा को संग ले
ब्रज-वन में रास रचाऊँगा॥
किन्तु, आज क्या राधा से, मन
में विरक्ति ऐसी आई ?
आह! अभागी इस जीवन में
निरपराध ही विसराई॥
डगमग है यह नाव, कौन अब
इसको पार लगायेगा ?
तुम्हीं बतादो—मध्य धार में
कौन खिवैया पायेगा ?
कहां गईं वह सुखमय बातें
कहां गये वे आश्वासन ?
कहां गईं वह प्रेम-प्रतिज्ञा
जिनमें हम भूले निशि-दिन ?
त्याग रहे हैं तो त्यागें, पर
दर्शन मुझे करा जायें।
राधा को तज कुब्जा के ही
सँग में रास रचा जायें॥

दर्शन के यह प्यासे नयना
तृप्त तभी हो जायेंगे ॥
इकटक निरखेंगे उस छवि को
फिर भी नहिं थक पायेंगे ॥
करो यत्न यह शीघ्र भ्रमर !
आयें मेरे घनश्याम यहाँ।
नयन खोजते जिन्हें सदा वे
मेरे प्रियतम-प्राण कहाँ ?
जाओ भ्रमर ! कहो प्रियतम से
अब कुछ हृदय उदार करो।
हाथ जोड़ विनती है तुमसे
मुझ पर कुछ उपकार करो ॥
उद्धव ! सुन लो, आज हृदय में
उठा हुआ है झंझावात।
काल रात्रि छा गई अगर तो
हो न सकेगा कभी प्रभात ॥
इसीलिये अब शीघ्र सुनाओ
मथुरापति को यही पुकार।
नाथ ! अभी ब्रज-वन में जाकर
करिये राधा का निस्तार ॥

जीवन की नैया है डगमग
अरे ! खिवैया आ जाना ।
आह ! पड़ी है मध्य भ्रमर में
इसको पार लगा जाना ॥
भूल गये हो तुम मुझको तो
पर कैसे बिसराऊँ मैं ?
धधक रही है चिता हृदय में
कैसे धीरज पाऊँ मैं ?
जीवन की ढल रही दुपहरी
कर गहि नाथ ! उठा लेना ।
जैसे भी बन पाये, वैसे
मुझको नाथ ! निभा लेना ॥
बन जाती हैं भूल अनेकों
मानव से हे जीवन-धन !
किंतु, क्षमा भी कर देते हैं
उन भूलों को सयत मन ॥
मैं हूँ अति अज्ञान, क्षमा के
- योग्य, मुझे मत बिसराना ।
नाथ ! शीघ्र व्रज-वन में आकर
मुझको दर्शन दे जाना ॥

उद्धव ! कहो क्यों नहीं अब तक
आये ' सुन्दरश्याम यहां ?
नयन खोजते जिन्हें सदा वे
मेरे प्रियतम-प्राण कहां ?

卐

बोले उद्धव—'धैर्य न जब तक
अपने मन में लाओगी।
तब तक रासेश्वरि ! तुम भी
कर्त्तव्य समझ नहिं पाओगी॥
भूल रही हो ममता में, इस—
जीवन की है टेढ़ी धार।
बहती है इस पार कभी यह
बहने लगती है उस पार॥
परिवर्तन होते रहते हैं
देह-धरे का धर्म यही।
पर, होता है प्रभु-इच्छा से
जीवन का है मर्म यही॥

उर-तंत्री के तार बिखर कर
गड़बड़ सब हो जाता है।
होता नहीं अभीष्ट सिद्ध तो
यह मन भी रो जाता है॥
किन्तु बिगड़ते-बनते हैं नर
जीते हैं मिट जाते हैं।
रोते हैं, हँसते भी हैं—
सोते भी हैं, जग जाते है॥
कहो, कभी क्या रुक पाता है
जग का चलता कोई काम ?
पर, ममता में व्यस्त हुआ नर
कर नहि पाता है विश्राम॥
अपने-अपने कर्म-हेतु, सब
प्राणी सुख-दुख पाते हैं।
फिर भी दोष दैव को दे शुभ-
कर्मों को बिसराते हैं॥
भाग्य-लेख नहिं मिट पाता है
कर लो कोई यत्न अनेक।
भावी होकर ही रहती है
चलती नहीं किसी की एक॥

माया की दुधारा से मानव
कभी निकल नहि पाता है।
ममता का यह गठ-बंधन
प्राणी को सदा झुलाता है।।
जीवन की सरिता में भी जब
आजाते हैं झंझावात !
रुक जाता, रासेश्वरि ! तब इस
आशा-नौका का निर्यान ।।
घट जाता है और कभी बढ़
जाता है इसका विस्तार ।
बहती है इस पार कभी यह
बहने लगती है उस पार ।।
बालक क्षण में सजा, मिटा—
देता ज्यों खेल सलोना है ।
वैसे ही नटवरनागर को
यह जग एक खिलौना है ।।
खेल खेल में बना बैठते
कभी धरा मंडल आकाश ।
क्रीड़ा में ही तोड़-फोड़ कर
कर देते हैं पूर्ण विनाश ।।

अपने इंगित पर ही वे—
प्राणी को सदा नचाते हैं।
भूले जीव कभी उनकी—
इच्छा को जान न पाते हैं ।।
बनना और बिगड़ना सब
यह धर्म देह के बतलाये।
होजाता जो, उस पर मानव
करता है क्यों पछिताये ?
ज्यों नव-मुंडित शिष्य सदा ही
धर्म-धर्म है चिल्लाता।
किन्तु धर्म क्या वस्तु, न यह
इसका कुछ विवरण दे पाता ।।
वैसे ही यह भूला मानव
देता है अनेक वक्तव्य।
किन्तु, स्वयं ही नहीं जानता
क्या होगा उसका कर्त्तव्य ?
जग के इन मिथ्या व्यसनों में
फँस जाता है लोभी मन।
खो देता है कभी-कभी वह
तब तक का निज सचित धन ।।

तज विवेक को होता मानव
काम-क्रोध में ओत-प्रोत।
उबल-उबल कर बढ़ जाता है
जीवन-सरिता का यह स्रोत ॥

बह जाता इसमें जो मानव
उसका अधिक कठिन निस्तार।
बहती है इस पार कभी वह
बहने लगती है उस पार ॥

तेरा-मेरा के फंदे से
प्राणी निकल नहीं पाता।
नहीं किसी का कोई जग में
यह न समझता मदमाता ॥

मिथ्या राग-रंग हैं जग के
नाशवान हैं सभी पदार्थ।
किन्तु, नहीं फिर भी यह प्राणी
तज पाता है मिथ्या स्वार्थ ॥

पति-पत्नी, माता, सुत, भगिनी
बिछा हुआ है सुन्दर जाल।
काम क्रोध या लोभ मोह, यह
ही तो हैं जी के जंजाल ॥

धन-ऐश्वर्य, प्रतिष्ठामय भय—
सरि हो भूल-भुलैया है।
पड़ जाती मँझधार, तभी—
जीवन की डगमग नैया है॥
जिस दिन भी इस मृद-पुत्तल से
हंस निकल कर जाता है।
उस दिन इस जग का सारा
ऐश्वर्य यहीं बिसराता है॥
राजा, रंक एक-से हैं सब
साम्यवाद का-सा है रंग।
यहाँ किये जो कर्म वही लग
पाते हैं प्राणी के संग॥
धन्य वही नर, जो ममता से
पार शीघ्र होजाते हैं।
इस मिथ्या माया को तज
केवल ईश्वर को ध्याते हैं॥
जैसे नदी कभी घट जाती
कभी वेग से बढ़ती है।
मानव की जीवन-सरिता भी
कभी उतरती-चढ़ती है॥

कभी गहन वह होजाती है
कभी छोड़ती शुष्क कछार।
बहती है इस पार कभी वह
बहने लगती है उस पार॥

मिथ्या भ्रम में भूला मानव
जान न कुछ भी पाता है।
मिलने पर सुख और बिछुड़ने
पर, दुख व्यर्थ मनाता है॥

शोक, हर्ष, भय, द्वेष सभी तो
लगे हुए जीवन के संग।
इन सब का अज्ञान मूल है
कर देता विवेक को भंग॥

जीवन-मरण धर्म हैं वपु के
लगा हुआ है योग-वियोग।
सदा भाग्यवश, निज कर्मों से
जीव भोगता जग के भोग॥

किन्तु, सदा देता है मानव
परमेश्वर को ही सब दोष।
फिर भी तो नहिं कर पाता है
दुर्बल मन में कुछ संतोष॥

जैसे सरिता चढ़ने पर
करती है सीमा-उल्लंघन।
ग्राम, नगर में हो प्रविष्ट
बहुतों का हरती धन-जीवन॥
किन्तु, शान्त तब होती है, जब
जल का होता अधिक छटाव।
रहती नहीं गहनता उतनी
होजाता है न्यून बहाव॥
जीवन-सरिता भी मद पाकर
यों ही चढ़ती जाती है।
मानव के सारे विवेक को
शीघ्र बहा ले जाती है॥
किन्तु, उतरने पर उसके—
मानव का होता रूप महान।
बंधन को वह तज देता है
जब मिट जाता है अज्ञान॥
जीवन की सरिता में भी—
आते हैं बहुत चढ़ाव-उतार।
बहती है इस पार कभी वह
बहने लगती है उस पार॥

इसीलिये है व्यर्थ किसी की
विरह-व्यथा में मिट जाना।
सदा, विपति में आवश्यक है
धैर्य और साहस लाना॥

•

भेजा है मुझको नटवर ने
कहने को संदेश यही—
इनके लिये नगर मथुरा में
अधिक कार्य अवशेष नहीं॥

धैर्य रखो अपने मन में, वे
शीघ्र यहां पर आयेंगे।
तब ब्रज-जन को दर्शन देकर
अंतर-व्यथा मिटायेंगे॥

कहा उन्होंने—कहना जाकर
राधा से—'दुख-ग्रस्त न हों।
शीघ्र आरहा हूँ ब्रज-वन में
चिंता में वे ग्रस्त न हों॥

पराधीनता गई, किन्तु—
नाना चिंतित दिखलाते हैं ।
उचित व्यवस्था होने तक वे
मुझको छोड़ न पाते हैं ॥
जो स्वतंत्रता प्राप्त हुई, यह
जैसे भी थिर रह पाये ।
वही व्यवस्था शेष अभी है
जिसमें सुख-वैभव छाये ॥'
राधा बोलीं—'उद्धव ! कब तक
है उनके आने की आशा ?'
बोले उद्धव—'हैं वे व्याकुल
रासेश्वरि ! रक्खो विश्वास ॥
बिना मिले तुमसे होगी क्या
शांति कभी उनके मन को ?
भूल नहीं पाते वे तुमको
नंद, यशोदा ब्रज-जन को ॥
इसीलिये अब शीघ्र कृष्ण, ब्रज-
वन में आने वाले हैं ।
उसी सुखद यमुना-तट पर वे
रास रचाने वाले हैं ॥'

हुआ हृदय संतोष कुछ, पा संदेश-सनेह।
आश्वासन देकर गये, उद्धव अपने गेह॥

जब उद्धव अपने गेह गये
संतोष हुआ उर में भारी।
रटना बस एक रही मुख पर
'कब टेर सुनोगे गिरिधारी?'

द्वादश सर्ग

मधुरिमा जगती पर साकार
हुई, जब आया था मधुमास ।
हुआ था रजनी का अवसान
भोर का होने लगा प्रकाश ॥

प्रवाहित सुरभित सुखद समीर
छलकती मादकता सानंद ।
कभी शीतल झोंकों के साथ
कभी हो जाती थी अति मंद ॥

ओढ कर लाल लाल परिधान
झाकती थी ऊषा जग-ओर ।
अलमती खड़ी सुन्दरी एक
मेघ-खंडों की ओट बटोर ॥

अरुणिमा होकर जब साकार
लगी पट को करती-सी दूर ।
जीतने क्षिति तम को आलोक
चढ़ा, ज्यों युद्धस्थल मे शूर ॥

लगे क्षिति से चढ़ने स्वयमेव
रश्मियुत दिनकर ज्योतिर्मान ।
डाल जगती पर चादर हेम
छोड़ते थे मधुमय मुस्कान ॥

पल्लवित पुष्पित थे सब वृक्ष
सुहावन लगता था उद्यान ।
छलाँगें भरते मत्त कुरग
विहगों का था कलरव गान ॥

जहा बैठीं वृषभानु-कुमारि
बोलता छत पर बैठा काक ।
शकुन था—प्रियजन से हो भेट
हुईं वे विह्वल हर्ष अवाक ॥

कहा ललिता से—'क्या वे शीघ्र
मुझे दर्शन देंगे छविधाम ?'
कहा उसने—'शुभ लक्षण आज
यही संभव—आयें घनश्याम ।।'

卐

हो चला जैसे ही मध्यान्ह
उष्णता का था कुछ आभास ।
चले पशु पक्षी तरु की ओट
खोजते थे शीतल आवास ।।

चली थी जो प्राची से वायु
मत्त सुरभित शीतल कुछ मंद ।
उसी से उलझ, बनाती उष्ण
रश्मियां खेल रहीं स्वच्छंद ।।

रश्मियों का पाकर प्राबल्य
वायु थी उनकी अनुगत आज ।
न करता ज्यों मानव परतन्त्र
स्वेच्छा से कोई भी काज ।।

प्रवाहित होती बंधन मुक्त
रश्मियों से छुए जभी समीर ।
फूँकती तन जीर्णों में प्राण
प्रफुल्लित करती, हरती पीर ।।

बैठ कर तरु की शीतल छाँह
बोलता था उन्मत्त मयूर ।
प्रियतमा आती उसकी आज
गई थी जो वन-मध्य सुदूर ।।

लिये प्रत्यावर्त्तन की आश
देख लेता था पथ की ओर ।
कभी हँस लेता था कर याद
भीगती कभी नयन की कोर ।।

चला सहसा वन-पथ पर भाग
प्रियतमा अपनी आती देख ।
तभी उसके मुख पर उन्मुक्त
चमकने लगी हँसी की रेख ।।

बढ़ी थी वह भी उसको देख
हुई थी पाकर धन्य, सनाथ ।
मिले नव युग्म बढ़ा आनंद
झूमते थे दोनों ही साथ ।।

देखना थी राधा निर्वाक्
कहा—'इनमें कितना अनुराग?
प्रेमिका का आवर्त्तन देख
गया यह भी वन-पथ पर भाग !!

कहां है मानव में वह प्रेम ?
नारि, नर पर अनेक अनुरक्त।
किन्तु, नर बैठा उनको भूल
तड़पती हैं, पर, वे परित्यक्त ॥'

卐

चले दिनकर पश्चिम की ओर
समेटे हुए रश्मि-परिधान ।
हुए वे स्वयं पटल की ओट
सांझ का दे जग को वरदान ॥

व्योम पर गई कालिमा दौड़
रहे नक्षत्र उसे भी चीर ।
उष्णता को भुज-बल से जीत
सुगंधित शीतल चला समीर ॥

कौमुदी बिखरी जग पर शुभ्र
प्रकाशित नभ में हुआ मयंक।
मनोहर मृग-शावक मदमत्त
विचरते उपवन में निःशंक॥

विटप लगने थे जैसे थंभ
लगे था सुन्दर व्योम-वितान।
जहां वृषभानु नंदिनी बैठ
किया करतीं प्रियतम का ध्यान॥

प्रकृति की शोभा रहीं विलोक
यहीं बैठीं सखियों के साथ।
तभी आकर बोली सखि एक
आरहे हैं सजनी ! व्रजनाथ॥

नहीं आया सहसा विश्वास
उठीं, पर, सुन कर उसकी बात।
टपकने नयनों से प्रेमाश्रु
लगे-श्रावण की-सी बरसात॥

卐

उठ चलीं प्रेम-विह्वल थीं
स्वागत प्रभु का करने को।
वरदान बने अब आंसू
मन की पीड़ा हरने को॥

आ रहे सामने से वे
वह देख उन्हें हरषाईं।
प्रभु पद में गिर कर दृग से
थी मुक्तावलि बरसाईं॥

नटवर ने झुक कर उनको
निज कर से शीघ्र उठाया।
बोले—'हे प्रिये! तुम्हारी
आकुलता सुन कर आया॥

यह कैसी दशा बनाई
कुम्हलाया जीवन, यौवन?
लगता है मुझे—बना अब
यह उपवन, पूर्ण तपोवन॥'

बोलीं राधा—'क्यों प्रियतम!
आने में देर लगाई?
क्या रूठ गये थे निष्ठुर!
मुझको दिन रैन रुलाई॥'

बोले नटवर—'करना था
कुछ कार्य मुझे भक्तों का।
इसलिये वहाँ पर जाकर
संहार किया दुष्टों का॥

बंधन से मात पिता को
तब मैंने मुक्त कराया।
नाना को राज्य दिलाकर
शासन का कार्य चलाया॥

पर भय है अभी—न कोई
अरि मथुरा पर चढ़ आवे।
इसलिये मुझे आने का
आदेश न वे दे पाये॥

वन में बसंत बिखरा है
हम भी उर मोद मनायें।
भूल व्याकुलता सारी
अब चल कर रास रचायें॥

卐

वंशी से उठीं तरंग
जब रास हुआ मधुबन में।
छागईं घटाएँ नभ पर
स्वर गूँजे तभी गगन में॥

जब मेघ हिलोरों में भर
अपना उल्लास दिखाते।
बरसा कर अमृत बूँद
उत्साह नया दे जाते॥

चल रही वायु भी सन सन
मानों संगीत सुनाती।
वन-उपवन में जा जाकर
सौरभ भर भर कर लाती॥

जड़ जंगम—सब जीवों में
उल्लास भरा जन जन में।
वंशी से उठीं तरंगें
जब रास हुआ मधुबन में॥

कर रहे नृत्य बनवारी
थीं साथ प्रियतमा राधा।
सखियों ने भी उनके सँग
नृत्याभ्यास था साधा॥

चलने पर उठते थे पग तल
नूपुर झंकार सुनाते।
होते जो शब्द वहाँ पर
उस लय में ही मिल जाते॥

ब्रज रज भी उड़ती जाती
भर रहा नृत्य कण-कण में।
वंशी से उठीं तरंगें
जब रास हुआ ब्रज वन में॥

हिंसक पशु भी आ आकर
स्वर-लय में डूबे जाते।
जलचर नभचर भी बैठे
तल्लीन वहाँ दिखलाते॥

कपि के समीप ही मैना
उल्लास लिये बैठी थी।
केहरि का जहाँ अजा भी
विश्राम किये बैठी थी॥

थीं थिरक रहीं मृग पत्नी
सब मुदित हुईं वे मन में।
वंशी से उठीं तरंगें
जब रास हुआ ब्रज-वन में॥

थे चोर, काक, कोयल भी
बैठे जाकर भूतल पर।
मिल कर बिडाल भी उनसे
करते थे बात परस्पर॥
तब धेनु और चित्रक में
कुछ भेद नहीं रह पाया।
सब ने ही वहाँ परस्पर
था भ्रातृ भाव अपनाया॥

मिट गई ईर्ष्या सब की
आमोद भरा जीवन में।
चहुँ ओर से उठीं तरंगें
जब रास हुआ ब्रज-वन में॥

नभ में, दिगन्त, जल, थल में
सब ओर नृत्य ही छाया।
इस महानृत्य में मानो
यह अखिल विश्व भरमाया॥
बैठे विमान पर सुरगण
थे देख रहे ललचाये।
जय-घोष किया सब ही ने
नभ से प्रसून बरसाये॥

थे मग्न यक्ष, किन्नर गण
भेरी बज रही गगन में।
वंशी से उठीं तरंगें
जब रास हुआ ब्रज वन में॥

यह छवि वरणि न जाती।
नटवर के संग, मुदित हुई मन
राधा रास रचाती।
यह छवि वरणि न जाती॥

यूथ-यूथ सखि मिल कर आई
प्रेम विभोर दिखातीं,
वंशी की लय के संग अपने
पग तल रही उठातीं।
यह छवि वरणि न जाती॥

अति विभोर थीं महानृत्य के
मद में प्रभु गुण गातीं,
निज निज झोली से ले-ले कर
वे प्रसून बरसातीं।
यह छवि वरणि न जाती॥

कैसी सुन्दर छवि निर्विकार,
थे सब प्रसन्न उनको निहार।

क्या उपमाएँ, नहिं जान पड़ें,
उपमाओं से उपमेय बड़े,
यह सोच रहे सब खड़े-खड़े,
थे व्यर्थ कोप सब बड़े-बड़े।

अर्पित करते तब पुष्प हार,
'राधा-माधव' की जय पुकार॥

'राधा-माधव' शब्द यही अनमोल उठे।
माधव भी तब 'राधा-राधा' बोल उठे॥

'राधा' महाकाव्य पर कुछ सम्मतियां

पृथक् पृथक् विषयों को लेकर पद्यों की रचना साहित्य मे अपना विशेष स्थान रखती है। परंतु एक विषय अथवा एक पात्र को लेकर आदि से अंत तक रचना का निर्माण करने की रुचि प्राय: कम होती है। समाज मे ऐसी रचनाओं का उपयोग किसी तरह कम नहीं है। लेखक ने राधा के प्रति अगाध श्रद्धा रख कर कुछ लिखना प्रारंभ किया और उनके ही कहने के अनुसार वह अनायास लिखते ही चले गए और उसने इस पुस्तिका का रूप ले लिया। मैं न कवि हूँ और न कविता का पारखी, परंतु लेखक के उत्साह और उमग से अवश्य ही प्रभावित हुआ हूँ। मुझे विश्वास है कि उनकी रचना का स्वागत किया जायगा और उन्होंने जिस भावना से प्रेरित होकर इसे लिखा है उसका सम्मान किया जायगा।

—माननीय श्री लालबहादुर शास्त्री
मंत्री, यातायात और रेल, केन्द्रीय सरकार.

आपकी कविता में प्रसाद है और भाषा तथा भाव प्राञ्जल और रसमय है आशा है छपने के बाद हिन्दी जगत मे इस ग्रन्थ का अच्छा स्वागत होगा।

—माननीय श्री कमलापति त्रिपाठी
मंत्री, सूचना तथा सिंचाई विभाग, उत्तर प्रदेश.

श्री दोउदयालजी गुप्त ने 'राधा' महाकाव्य लिखकर हिन्दी साहित्य की एक बहुत बड़ी कमी को पूरा किया है।

—*श्री लक्ष्मीरमण आचार्य*

सदस्य, विधान सभा, उत्तर प्रदेश.

'राधा' निस्संदेह हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि करने वाला काव्य है।

—*कविवर श्री शरणविहारी गोस्वामी*

इसमें धार्मिक विचारों के साथ-साथ राष्ट्रीय और सामाजिक विचारों का भी अच्छा दिग्दर्शन किया है। ऐसा लगता है कि वर्तमान भारत की राजनैतिक और सामाजिक समस्याएं ही साकार हो उठी हैं। यह अपने ढंग का, इस वर्ष का सर्वोत्तम ग्रन्थ है।

—*युग समाचार २८-१०-५२*

प्रयत्न सराहनीय है। आशा है कि भक्त लोगों के लिये संतोष का साधन बनेगा।

—प्रो० *श्री इन्द्रविद्यावाचस्पति*

(जनसत्ता, देहली)

'राधा' महाकाव्य अपूर्व रचना है, छंदों में प्रवाह और भाषा मंजी हुई, भाव पूर्ण है। श्री कृष्ण-प्रिया राधा के संबंध में अभी तक कोई क्रमबद्ध साहित्य उपलब्ध नहीं था वह कमी इस

'राधा' महाकाव्य पर कुछ सम्मतियां

पृथक् पृथक् विषयों को लेकर पद्यों की रचना साहित्य में अपना विशेष स्थान रखती है। परंतु एक विषय अथवा एक पात्र को लेकर आदि से अंत तक रचना का निर्माण करने की रुचि प्रायः कम होती है। समाज में ऐसी रचनाओं का उपयोग किसी तरह कम नहीं है। लेखक ने राधा के प्रति अगाध श्रद्धा रख कर कुछ लिखना प्रारंभ किया और उनके ही कहने के अनुसार यह अनायास लिखते ही चले गए और उसने इस पुस्तिका का रूप ले लिया। मैं न कवि हूँ और न कविता का पारखी, परंतु लेखक के उत्साह और उमंग से अवश्य ही प्रभावित हुआ हूँ। मुझे विश्वास है कि उनकी रचना का स्वागत किया जायगा और उन्होंने जिस भावना से प्रेरित होकर इसे लिखा है उसका सम्मान किया जायगा।

—माननीय श्री लालबहादुर शास्त्री
मंत्री, यातायात और रेल, केन्द्रीय सरकार,

आपकी कविता में प्रसाद है और भाषा तथा भाव प्राञ्जल और रसमय है आशा है छपने के बाद हिन्दी जगत में इस ग्रन्थ का अच्छा स्वागत होगा।

—माननीय श्री कमलापति त्रिपाठी
मंत्री, सूचना तथा सिंचाई विभाग, उत्तर प्रदेश.

श्री दाऊदयालजी गुप्त ने 'राधा' महाकाव्य लिखकर हिन्दी साहित्य की एक बहुत बड़ी कमी को पूरा किया है।

—श्री लक्ष्मीरमण आचार्य
सदस्य, विधान सभा, उत्तर प्रदेश.

'राधा' निस्संदेह हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि करने वाला काव्य है।

—कविवर श्री शरणविहारी गोस्वामी

इसमें धार्मिक विचारों के साथ-साथ राष्ट्रीय और सामाजिक विचारों का भी अच्छा दिग्दर्शन किया है। ऐसा लगता है कि वर्तमान भारत की राजनैतिक और सामाजिक समस्याऐं ही साकार हो उठी हैं। यह अपने ढंग का, इस वर्ष का सर्वोत्तम ग्रन्थ है।

—युग समाचार २८-१०-५७

प्रयत्न सराहनीय है। आशा है कि भक्त लोगों के लिये संतोष का साधन बनेगा।

—प्रो० श्री इन्द्रविद्यावाचस्पति
(जनसत्ता, देहली)

'राधा' महाकाव्य अपूर्व रचना है, छंदों में प्रवाह और भाषा मझी हुई, भाव पूर्ण है। श्री कृष्ण-प्रिया राधा के संबंध में अभी तक कोई क्रमबद्ध साहित्य उपलब्ध नहीं था वह कमी इस